(गोविन्द माधव)

कर्म और भाग्य

(पुस्तक संख्या–23)

विनयावनत–

ब्रह्मशंकर शास्त्री

➢ प्रकाशक की ओर से–

श्रीमद्भगवद्गीता के विशिष्ट भाष्यकार श्री ब्रह्मशंकर शास्त्री द्वारा कर्म एवं भाग्य के विषय में लिखी गयी ये पुस्तक विशिष्ट है। इसमें कर्म तथा भाग्य का स्पष्ट विवेचन सरल शब्दों में प्रस्तुत किया गया है। भाग्य का निर्माण मूल रूप से हमारे कर्मों के आधार पर ही होता है जिसे हम सौभाग्य कहते हैं वह हमारे ही शुभ कर्मों का स्पष्ट परिणाम है तथा जिसे हम दुर्भाग्य कहते हैं वह हमारे दुष्कर्मो के फल के रूप में प्रकट हो जाता है। इसी से हमें अनुकूलता व प्रतिकूलता का आभास हुआ करता है और हम सुखी व दुखी हुआ करते हैं। इस तथ्य को हमें स्पष्ट रूप से समझना चाहिए कि पूर्व जन्मों के संचित कर्म हमारे भाग्य को वर्तमान जीवन में किस प्रकार प्रभावित करते हैं? इसका तार्किक निराकरण इस लघु पुस्तिका में प्रस्तुत किया गया है।

वर्तमान जन्म के कर्म कैसे संचित हो जाते हैं? और वे किस प्रकार से हमारे इस जन्म को तथा अग्रिम जन्म को प्रभावित करते हैं। इसकी विषद विवेचना प्रस्तुत की गयी है। जो महानुभाव पुनर्जन्म के सिद्धांत को स्वीकार नहीं करते हैं अथवा कतिपय कारणों से अग्रिम जन्म को नहीं मानते हैं उन्हें भी निष्पक्ष भाव से इस लघु पुस्तिका का अध्ययन करना चाहिए। इस प्रकार प्रत्येक विद्वान तथा विचारशील मनुष्य का यह कर्तव्य है कि वह जीवन का वास्तविकता, दर्शन एवं उद्देश्य को जानने हेतु प्रत्येक धर्मग्रंथ का अध्ययन जरूर करे। उसी प्रकार हम सभी का ये कर्तव्य है कि जो तथ्य तार्किक रूप से अनुभव के आधार पर प्रतीत हो रहा है उसका हमें अध्ययन एवं अवलंबन अवश्य करना चाहिए। कर्म और भाग्य के संदर्भ में लिखी गयी यह पुस्तिका साधकों के लिए विशेष रूप से अत्यंत उपयोगी होगी, ऐसा हमारा विश्वास है।

➢प्रकाशक

➢विनम्र अनुरोध

परमात्मा अव्यक्त एवं अदृश्य है, परंतु वह विभिन्न स्वरूपों में प्रकट होता है। परमात्मा की अव्यक्तता एवं अदृश्यता की तरह से ही परमात्मा की कर्म व्यवस्था जो भाग्य का आधार है, वह भी पूरी तरह से अव्यक्त एवं अदृश्य है, परंतु वह परिणाम के स्वरूप में प्रकट भी होती है। हम जो भी कर्म करते हैं। इस संसार में हमारी जो भी चेष्टाऐं हैं उन सबको परमात्मा की व्यवस्था के अधीन अंकित किया जाता है। अंकित किए गए कर्मो के आधार पर हमें परिणाम अवश्य प्राप्त होता है। शुभ कर्मो का शुभ, अशुभ कर्मों का अशुभ परिणाम तथा शुभाशुभ कर्मों का मिश्रित शुभाशुभ परिणाम हमें अवश्य ही प्राप्त होता है। यह परमात्मा की व्यवस्था का निश्चित स्वरूप है। हम सभी इस जगत में प्रतिकूलताओं के आने पर परेशान होते हैं और अपने दुर्भाग्य पर दुखी होते हैं परंतु हमें यह जानना चाहिए कि आज जो प्रतिकूलताऐं दुर्भाग्य के रूप में हमारे समक्ष प्रकट हुईं हैं, हमें प्रतीत हो रही हैं वह हमारे ही पूर्वकृत कर्मों का परिणाम हैं। वे कर्म चाहें इस जन्म में संपादित किए गए हों अथवा पूर्व जन्म में संपादित किए गए हों।

किस कर्म का क्या परिणाम होगा? और वह कब होगा? कैसे प्रकट हो जाएगा? यह जान पाना असंभव है। कोई भी मनुष्य अपने कृत कर्मों के परिणाम के प्रगटीकरण को सम्यक्रूपेण नहीं जान सकता है। अभी तक ऐसा कोई शास्त्र, वैज्ञानिक विधि, पद्धति का अविष्कार नहीं हो सका है जिससे हम पूर्वकृत कर्मों के निश्चित परिणाम की जानकारी प्राप्त कर लें। मात्र अनुभव से ही तथा स्थितियों को देखकर हम अपने पूर्वकृत कर्मों के स्वरूप के विषय में विचार करते हैं। इसी क्रम में जब प्रतिकूलताऐं उपस्थित होती हैं तो उसे अपने दुर्भाग्य का नाम देकर अपने पूर्वकृत कर्मो को दूषित होने का अनुमान लगाते हैं और परिस्थितियों के अनुकूलताओं में साधारण रूप से यह विचार करते हैं कि जो अनुकूलताऐं सौभाग्य के रूप में हमारे समक्ष उपस्थित हैं वे हमारे शुभ कर्मो का परिणाम ही हैं। यह एक साधारण तथ्य है जिससे हम सभी परिचित हैं।

परमपिता परमात्मा हमारा जनक है। हम आप और सभी को उत्पन्न करने वाला है। हम आप सभी को उत्पन्न करने के कारण वह हमारा पिता भी है। परमात्मा सभी का प्रिय है, इसलिए उसे सामान्य रूप से परमपिता कहा जाता है। एक पिता यह कभी नहीं चाहेगा कि हमारा पुत्र गरीब हो, दुखी हो, भोजन, आवास, वस्त्र, चिकित्सा हेतु दर–दर मारा–मारा फिरे। फिर भी हम देखते हैं कि हमारे समाज में एक शिशु अत्यंत गरीब परिवार में उत्पन्न होता है और वह जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं भोजन, आवास, वस्त्र आदि से भी

वंचित रहता है और दूसरी ओर एक अन्य शिशु समृद्ध परिवार में जन्म लेता है और वह संसार की सभी आवश्यकताओं का उपभोग करता है। परमात्मा यह कभी नहीं चाहेगा कि अर्थात् उसकी यह आकांक्षा कभी नहीं होगी कि हमारा कोई पुत्र गरीब हो ओर अनेक प्रकार की प्रतिकूलताओं में जीवन यापन करे और दूसरा पुत्र अत्यंत समृद्ध हो तथा संसार की समस्त विलासतापूर्ण वस्तुओं का उपभोग करे।

इस उपरोक्त विषय पर जब हम गहनतापूर्वक विचार करते हैं तथा एक दार्शनिक के रूप में हम चिंतन करते हैं तो हमें तार्किक दृष्टि से यह मानना पड़ता है कि इस जन्म से पूर्व भी हमारा जन्म अवश्य था जिसके संबंध में हमारी स्मृति अर्थात् यादगार विस्मृत कर दी गयी है। हम वर्तमान परिस्थितियों के आधार पर ही अपने पूर्व जन्मों का अनुमान लगाने का प्रयास करते हैं। सुखी शिशु के बारे में, उसके संदर्भ में, यह अवधारणा व कल्पना करते हैं कि वह पूर्व जन्मों में सत्कर्मी था तथा जो शिशु दीनहीन है उसे निहारकर हम उसके दुष्कर्मी होने की कल्पना सहजता से कर लेते हैं। पूर्व जन्मों के कृत कर्मों को इसी कारण हमें स्वीकारना पड़ता है। पूर्व जन्मों के स्वीकारोक्ति के अन्य भी आधारभूत और सशक्त कारण हैं जिन्हें हम विचार से तथा गहन चिंतन से और परिस्थितियों को देखकर जान सकते हैं। कर्म एवं भाग्य के विषय में पूर्व जन्मों को भी आधार मानकर कर्म एवं भाग्य विषयक पुस्तक लिखी गयी है। इस संबंध में यह कहना अभीष्ट और प्रसंगानुकूल होगा कि अपने प्रयासभर शुभ कर्मो का हमें आचरण अवश्य ही करना चाहिए तथा इसके लिए हमें परमपिता परमात्मा से नित्य प्रार्थना करनी चाहिए कि वह हमें सद्बुद्धि प्रदान करें तकि हम दुष्कर्मो का परित्याग करके सत्कर्मो का निश्चित व्यवहार एवं आचरण कर सकें। सत्कर्मो से ही हमारा भविष्य सुंदर होगा जो सौभाग्य के रूप में स्वतः ही परिवर्तित हो जाएगा और सौभाग्यरूपी सुखद स्थिति हमें अनायास ही बिना प्रयास के प्राप्त हो जाएगी तथा परमात्मा की व्यवस्था में प्रकट होगी। जिसे हम दुर्भाग्य कहते हैं वह स्थिति तत्काल विलुप्त हो जाएगी। कर्म तथा भाग्य के महत्वपूर्ण तथ्यों के आप समझ सकेंगे, ऐसी आशा है।

- **ब्रह्मशंकर शास्त्री**

(1) कर्म से भाग्य का निर्माण होता है–

हम जो कर्म करते हैं उससे ही हमारे भाग्य का निर्माण होता है। यह तथ्य ध्रुव सत्य और अटल है। इसमें किसी भी प्रकार का परिवर्तन संभव नहीं है। आज का कर्म कल भाग्य के स्वरूप में स्वतः ही परिवर्तित हो जाता है, परिणित हो जाता है। हम जो भी कर्म अपने जीवनपर्यंत करते हैं उसका स्पष्ट रूप से लेखा–जोखा रहता है। प्रत्येक कर्म का अंकन होता है। हमारा कोई भी कर्म अंकित न हो यह असंभव है। प्रत्येक मनुष्य कर्म करने को बाध्य है और हमें प्रतिक्षण कर्म करना पड़ता है। यह निश्चित सिद्धांत है। हम सभी को कर्म करने की बाध्यता है। हम यदि चाहें कि कर्म न करें तो यह संभव नहीं है। हमें कर्म करना ही पड़ेगा। जब हमें कर्म करना पड़ेगा तो उसके प्रतिफल में हमारा भाग्य भी बनेगा। ऐसा निश्चित है। इस कारण हमारा जो भाग्य है वह पूरी तरह से हमारे द्वारा पूर्वकृत कर्मों पर आधारित है।

पूर्वकृत कर्मो से हमारे वर्तमान भाग्य का निर्माण हो चुका है। पूर्वकृत कर्मो को संचित कर्म की संज्ञा दी जाती है। वर्तमान में हमारे द्वारा जो भी कर्म किए जा रहे हैं वे क्षण–प्रतिक्षण पूर्वकृत होते जा रहे हैं। पूर्वकृत कर्मों में सर्वप्रथम हम पूर्व जन्म में कृत कर्मों के विषय में विचार करना चाहेंगे। पूर्व में हमारा जन्म किस–किस रूप में हुआ था? यह तथ्य हम नहीं जानते हैं। अर्थात् यह तथ्य हमारी संज्ञानता में नहीं है। इसलिए हम यह भी जानते हैं कि हमने उन जन्मों में क्या कर्म किए थे? जब हमें हमारे जन्मों का ज्ञान नहीं है तो पूर्व जन्मों के कर्मों का ज्ञान हमें कैसे हो सकता है? हम सभी इस संबंध में अनुमान लगाते रहते हैं। हमारे अनुमान के आधारभूत अन्य तथ्य भी हैं। हमारे जन्म की स्थिति, परिस्थिति, स्वभाव, वातावरण, संयोग आदि–आदि। जैसे एक शिशु एक गरीब परिवार में उत्पन्न होता है तथा दूसरा अति संपन्न परिवार में जन्मता है।

उसी प्रकार एक शिशु दुष्कर्मी तथा असामाजिक कर्मो में लिप्त रहने वाले परिवार में पैदा होता है। दूसरा सत्कर्मी यज्ञादिक शुभ कर्मों को करने वाले श्रीमान के घरों में जन्मता है। एक शिशु उस देश में जन्मता है जहां परमात्मा के अस्तित्त्व को लोग स्वीकारते ही नहीं हैं। दूसरा शिशु घोर आस्तिकवादी परिवार में जन्मता है। एक शिशु राज परिवार में जन्मता है और दूसरा सेवक के परिवार में जन्म लेता है। इन समस्त तथ्यों से पूर्व जन्म तथा उसके किए गए कर्मों का अनुमान लगाया जाता है जिन पर हमारे वर्तमान भाग्य का निर्माण हुआ है। पूर्व जन्म के कर्मों के संबंध में संपूर्ण अनुमान हम अधिकांशतः फल को देखकर निश्चित करते हैं और अपनी विचारधारा को पुष्ट करते हैं। जैसे–

(1) निम्न परिवार में उत्पन्न हुए शिशु के पूर्व जन्मों के कर्मो के उचित न होने का अनुमान करते हैं। यह विनिश्चय करने का प्रयास करते हैं कि इसने पूर्व जन्मों में अशास्त्रसंगत कर्मों का संपादन किया होगा।

(2) सुसंपन्न, राजघराने आदि में उत्पन्न शिशु के पूर्व जन्मों में कर्मों के शुभ होने का अनुमान लगाते हैं अर्थात् यह विनिश्चय करने का प्रयास करते हैं कि इसने अपने पूर्व जन्म में अनेक प्रकार के सत्कर्मों का क्रियान्वयन किया होगा।

(3) रुग्ण, बीमार शिशु को देखकर उसके पूर्व जन्मों के अशुभ कर्मों का अनुमान लगाते हैं तथा यह विनिश्चय करने का प्रयास करते हैं कि इसने अपने पूर्व जन्म में समाज में अव्यवस्था फैलाई होगी।

(4) मध्यमवर्गीय परिवार में जन्म शिशु का पूर्व जन्म के मिश्रित कर्मों का अनुमान लगाते हैं और यह विनिश्चय करने का प्रयास करते हैं कि इसने अपने पूर्व जन्म में लोगों का हित और अहित किया होगा।

(5) अत्यंत गंभीर रूप से बीमार और दयनीय स्थिति वाले परिवार में जन्म लेने वाले शिशु के संबंध में यह अनुमान लगाते हैं कि यह पूर्व जन्म में अवश्य ही दुष्कर्मी रहा होगा।

उपरोक्त तथ्यों से यह प्रतीत होता है कि हमारे पूर्व जन्मों का परिणाम निश्चितरूपेण हमें प्राप्त होता है तथा पूर्व जन्म था इसका भी हम विनिश्चय कर लेते हैं। यह सबका सब विनिश्चय अनुमान पर आधारित होता है। अदृश्य रहता है अर्थात् हम किन–किन जन्मों में क्या रहे हैं? कहां–कहां रहे हैं और हमने उन जन्मों में क्या कर्म किए थे? उसका मात्र हम अनुमान कर सकते हैं। इसका निश्चित, ठीक–ठीक सम्यक्रूपेण विनिश्चय हो पाना संभव नहीं है। यह सबका सब अनुमान पर आधारित है। परंतु पूर्वकृत अनेक कर्मो से ही हमारे वर्तमान भाग्य का निर्माण हुआ है यह निश्चित तथ्य है। इस तथ्य को सम्यक् प्रकार से निश्चित किया जा सकता है। हमने पूर्व जन्मों में जो कर्म किए हैं उनके आधार पर ही हमारा वर्तमान जन्म प्रकट हुआ है। मिला हुआ है। इस सिद्धांत में कोई कमी नहीं है।

(2) पूर्व जन्म के संचित कर्म अदृश्य हैं :–

पूर्व जन्मों में हमने जो भी कर्म किये थे वह वर्तमान जन्म का परिणाम प्रस्तुत करते हैं। जन्म की स्थिति, परिस्थिति, वातावरण के आधार पर पूर्व जन्मों के कृत कर्मो का विनिश्चय कर लेते हैं। शुभ, अशुभ अथवा शुभाशुभ कर्मो के बारे में हम सभी अनुमान करते

हैं। यहां पर एक तथ्य और उल्लेखनीय है कि यदि रूग्ण, बीमार शिशु अथवा विकलांग शिशु उत्पन्न हुआ है तो उसके परिजन माता पिता उसकी रुग्णता, बीमारी को ठीक कराने हेतु धन का अपव्यय करते हैं। शिशु की रुग्णता, विकलांगता को सही कराने का प्रयास करते हैं। यह परिजनों के धन का दुरूपयोग भी है। यदि बालक रुग्ण, बीमार, विकलांग न उतपन्न हुआ होता तो धन के अपव्यय और कठिनाई की परिस्थितियों से परिजनों को नहीं गुजरना पड़ता। इस तथ्य से ऐसा अनुमान लगाया जाता है कि जो धन हम खर्च कर रहे हैं वह भी कतिपय कारणों से ही खर्च हो रहा है। अनायस खर्च नहीं हो रहा है। उसका भी एक निश्चित कारण है और वह कारण भी अदृश्य है।

पूर्व जन्मों के सम्बंध में हम नहीं जानते हैं केवल परमात्मा ही पूर्व जन्मों के कर्मो के सम्बंध सम्यक् रूप से जानता है। इसी तथ्य के प्रकटीकरण हेत श्रीभगवान ने श्रीगीता जी के सातवें अध्याय में 26वें श्लोक में स्पष्ट रूप से कहा है–

वेदाहं समतीतानि वर्तमानानानि चार्जुन।

भविष्याणि च भूतानि मां तु वेद न कश्चन।।

भावार्थ : हे अर्जुन ! मैं अतीत में हुए सभी जीवों को जानता हूं। वर्तमान में जो भी जीव हैं मैं उनको भी जानता हूं और भविष्य में जो भी जीव होंगे उनको भी मैं जानता हूं। परन्तु तुम नहीं जानते हो।

हम सभी अपने पूर्व जन्मों को नहीं जानते हैं तथा पूर्व जन्मों के कर्मों के बारे में भी हमें कोई ज्ञान नहीं है परन्तु उसी के आधार पर हमारा वर्तमान जन्म और उसके भाग्य का निर्माण हुआ है। यह एक विलक्षण बात है। ऐसा स्पष्ट है कि पूर्व जन्मों के कृत कर्म अर्थात् संचित कर्म अदृश्य हैं, जिन्हें हमारे द्वारा किसी भी प्रकार से जाना नहीं जा सकता है। मात्र उनका अनुमान लगाना ही संभव है। वर्तमान स्थिति को देखकर तभी हम यह कहते हैं कि ऐसा है तो ऐसा होगा। यह विचार हम कर लेते हैं। यह परमात्मा की विशिष्ट कर्म तथा भाग्य की व्यवस्था है जिसे मात्र परमात्मा ही जानता है। इस संसार में कोई व्यक्ति नहीं जानता।

हम बहुधा यह कहते रहते हैं कि हमारा भाग्य ठीक नहीं है। पर भाग्य क्यों नहीं ठीक है? इस पर अधिकांश लोग गहनतापूर्वक विचार नहीं करते हैं और वे अनेक प्रकार के वे उपाय करते हैं जो नहीं किये जाने चाहिए। जैसे किसी ज्योतिषी की शरण में जाना, तांत्रिक विद्या का आश्रय लेना तथा अन्य कतिपय महानुभावों की शरण में जाना जो हमारे

भाग्य को परिवर्तित करने का उपाय करने का दावा करते हैं। इस तथ्य को हमें निश्चित रूप से समझना चाहिए कि कोई भी व्यक्ति इस संसार में हमारे भाग्य को परिवर्तित नहीं कर सकता, क्योंकि हमारे कृत कर्मो के आधार पर ही हमारे भाग्य का विनिश्चय किया गया है और वह हमारे द्वारा ही परिवर्तित किया जा पाना संभव है। जैसे पूर्व जन्म में हमारे कर्म थे। वैसा ही जन्म तथा भाग्य हमें प्राप्त हुआ है। यह परमात्मा का विनिश्चय हैं। जो सटीक है और पूर्णरूपेण सही है। यह विशेष बात है और यह एक विडम्बना भी है कि जो हमारे संचित कर्म अदृश्य हैं उन्हें देखा जा पाना संभव नहीं है। उनका मात्र अनुमान ही लगाया जा सकता है।

(3) पूर्व जन्मों के कृत कर्मो से क्या विनिश्चय होता है ?

पूर्व जन्मों में किये गए कर्मो पर मनुष्य का पूरा जीवनवृत्त आधारित होता है। इस कारण हमारे जीवन में पूर्व जन्मों के कृत कर्मो का सर्वाधिक महत्व है। यह सम्पूर्ण व्यवस्था परमात्मा पर आधारित है। परमात्मा तथा उसकी कर्म व्यवस्था के आधार पर ही मनुष्य का जन्म प्राप्त होता है। इस मनुष्य जन्म के ग्रहण करने में उस अव्यक्त सर्वशक्तिमान परमात्मा की अतिशय कृपा ही मानना चाहिए। मनुष्य जन्म को शास्त्रों में अत्यंत दुर्लभ कहा गया है। यह जन्म वस्तुतः अत्यंत कठिन है, क्योंकि इसमें अपनी उन्नति और विकास के कर्म करने का अधिकार है। मनुष्य अपने जीवन में स्वाध्याय से मुक्त हो सकता है अर्थात् वह मोक्ष प्राप्त कर सकता है। इस प्रकार परमात्मा हमें जब मनुष्य जन्म देता है तो इसी कारण देता है कि हम स्वाध्याय, पुरूषार्थ, तपश्चर्या से मोक्ष प्राप्त करने का प्रयास करें और सत्कर्मो का आयोजन करें। इसके प्रतिकूल यदि मनुष्य अपने जीवन में दुष्कर्मो का सम्पादन करता है तो अनेक कष्ट उठाकर नरकगामी हो सकता है जिसका परिणाम अनेक प्रकार की तिर्यक् योनियों अर्थात् कीट पशु–पक्षी योनियों में जन्म लेना होता है।

इस तथ्य को ध्यान में रखकर हमें परमात्मा के द्वारा प्रदान किये गए मनुष्य जन्म का सदुपयोग करना चाहिए और इस मानव जीवन का कभी दुरूपयोग नहीं करना चाहिए। क्योंकि यह मानव जीवन अनेक पुण्य कर्मो के उदय होने के उपरान्त हमें एक लम्बे समय के पश्चात् प्राप्त होता है। इसलिए इस मानव जीवन के प्रत्येक क्षण का हमको सदुपयोग करना चाहिए और यह प्रयास करना चाहिए कि हम इस मानव जीव का सदुपयोग करके मुक्त हो जाए। मनुष्य जन्म के पूर्व जन्मों के कृत कर्मो से क्या विनिश्चय होता है?यह तथ्य विचारणीय है। इस सम्बंध में एक भाव का आप अवलोकन कीजिए।

(क) मनुष्य के जन्म स्थान का विनिश्चय होता है :–

परमात्मा मनुष्य के पूर्व जन्मों के कर्मो के आधार पर उसके जन्म स्थान का विनिश्चय करता है। मनुष्य का जन्म किस देश में, किस स्थान पर होना है? यह पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर विनिश्चय किया जाता है। संसार में अनेक देश हैं। जिनमें मानव जाति पायी जाती है। कुछ देश भोग प्रधान कुछ तमोगुण प्रधान हैं और कुछ देश राजसी गुणों से युक्त हैं तथा कुछ देशों में सात्विकता की लहर भी है। भोग प्रधान देशों में मनुष्य का परमात्मा के प्रति रूझान शीघ्र नहीं हो पाता है और वह अपना जीवन वहां के विलासतापूर्ण पदार्थो में ही व्यतीत कर देता है। तमोगुण प्रधान देशों में तामसी कार्यो की अधिकता रहती है और साथ ही भोगवृत्ति के कारण मनुष्य दुष्कर्मो के परित्याग की ओर प्रेरित नहीं हो पाता और वह अंततः अधोगति को प्राप्त होता है।

राजसी प्रधान देशों में मनुष्य कर्मों पर अधिक ध्यान देता है। वे अनेक प्रकार की तकनीक, खोजों में ही लगे रहते हैं और सम्पूर्ण जीवन नवीन प्रकार के कर्मो के सम्पादन में लगा देते हैं तथा परमात्मा की ओर उन्मुख नहीं हो पाते हैं। कर्म करते करते सम्पूर्ण जीवन विनिष्ट कर देते हैं। कर्मो को ही लक्ष्य मानकर भोगों में तन्मय रहना उनकी सहज प्रवृत्ति होती है। यह स्थिति उन्हें अपने कल्याण का साधन खोजने का समय भी नहीं देती है। कुछ देश सात्त्विक प्रधान होते हैं। इस कारण इन देशों में परमात्मा की कृपा से और अपने पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर जन्म प्राप्त होता है। मनुष्य किस देश में जन्म लेगा इसका विनिश्चय पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर होता है। यह सम्पूर्ण व्यवस्था हम मानने के लिए बाध्य हैं।

(ख) माता–पिता का विनिश्चिय होता है :–

पूर्व जन्मों कृत कर्मो के आधार पर मनुष्य के माता पिता का विनिश्चय होता है। इस वर्तमान जन्म में हमारे माता पिता कौन होंगे ? यह भी परमात्मा द्वारा ही हमारे पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर तय किया जाता है। आपने देखा होगा कि अनेक माता पिता पृथक्–पृथक् प्रकार की प्रवृत्तियों के होते हैं। कुछ अपनी संतानों को अधिक स्नेह करते हैं कुछ मध्यम स्नेह करते हैं और कुछ स्नेह तो करते हैं परन्तु कर्मो पर जोर देने के कारण उन्हें डांटते फटकारते भी रहते हैं। जितने प्रकार के माता पिता हैं उतने ही प्रकार की प्रवृत्तियां हमें देखने को मिलती हैं। प्रमुख प्रवृत्तियां तीन प्रकार की होती है। जिन्हें सात्त्विक, राजस तथा तामस कहा जाता है। एक माता पिता अपने पुत्र को फूलों की तरह रखता है, दूसरे रखना चाहते हैं परन्तु वह परिस्थितियों के कारण रख नहीं पाते हैं। तीसरे

रखने की इच्छा नहीं करते हैं क्योंकि इससे धन का अनावश्यक अपव्यय होता है। माता पिता का विनिश्चय इस प्रकार हमारे पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर ही होता है। यह भी हो सकता है कि वे आज हमारे माता पिता हो और कल हमारे पुत्र हों। यह सबकी सब परमात्मा की कर्म व्यवस्था के आधार पर विनिश्चित किया जाता है। हमारे माता पिता दयालु हैं और बिना किसी लोभ तथा लालच में अपनी समस्त सम्पत्ति हमें देना चाह रहे हैं, तो समझिए कि परमात्मा की हम पर अतिशय कृपा है। किसी के माता पिता अत्यंत कृपण होते हैं और वे अंत तक अर्थात् जीवन की अंतिम स्थिति तक अपनी सम्पत्ति को अपने पुत्रों को नहीं देना चाहते हैं उनका आयु बढ़ने के साथ धन और सम्पत्ति के प्रति लोभ लालच बढ़ता जाता है मरते दम तक अपनी संतानों को कुछ देने की इच्छा नहीं करते हैं। ऐसे लोभी माता पिता की वर्तमान में आज भरमार है। आपने वर्तमान में माता पिता की हत्या तथा उनको प्रताडित करने की अनेक घटनाऐं सुनी होंगी। यह इसी लोभ लालच के कारण होता है। यह भी हमारे पूर्व जन्मों के कृत कर्मो का ही एक परिणाम है। इस कारण पृथक्–पृथक् प्रकार के माता पिता का चयन और उनका विनिश्चय हमारे पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर ही होता है।

(ग) स्त्री–पुरूष का निर्धारण होता है।

जीव के लिंग का निर्धारण भी पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर ही होता है। परमात्मा हमें स्त्री बनायेगा अथवा पुरूष यह सबका सब वह परमात्मा अपनी व्यवस्था के आधार पर ही निश्चित कर देता है। परन्तु इस निर्धारण का आधार हमारे पूर्व जन्मों के कृत कर्म ही हैं। हम इस जन्म में पुरूष है तो आवश्यक नहीं है कि हमारा अगला जन्म पुरूष का ही हो। हम इस जन्म में स्त्री हैं तो यह भी आवश्यक नहीं है कि हमारा अगला जन्म स्त्री का हो। मृत्यु काल में जिस भाव की प्रधानता होती है वैसा अग्रिम जन्म हमें प्राप्त होता है। इस सम्बंध में हमारे पूर्व कृत कर्मो को आधार समझना चाहिए। इस प्रकार हमारे इस जन्म के कर्मो में भाव ही प्रधान है।

हमने यदि किसी स्त्री को या अपनी पत्नी को कष्ट दिया है तो हो सकता है कि हमें भी वह स्त्री पति बनकर उसी प्रकार कष्ट दे। इसी प्रकार किसी स्त्री ने अपने पति के आदेश का पालन नहीं किया है तथा उसकी उचित सेवा नहीं की है तो हो सकता है कि अगले जन्म में हमारे साथ वैसा ही व्यवहार हो। यह सबका सब पूरी तरह से अव्यक्त है जिससे सहजता से जाना जा पाना असंभव है और सब कुछ परमात्मा की व्यवस्था पर आधारित है, पर इसमें हमारे पूर्व जन्मों के कृत कर्म ही आधार माने जाते हैं। हम अपने कर्तव्यों को समझे और उसका सम्यक्रूपेण निर्वहन करें। शास्त्रों में अनेक घटनाऐं और

कहानियां इस प्रकरण से सम्बंधित आती हैं कि अमुक पूर्व जन्म में स्त्री था और अब इस जन्म में पुरूष है। इस कारण हमारे पूर्व जन्मों के कर्मो के आधार पर ही स्त्री पुरूष का निर्धारण परमात्मा की व्यवस्था के आधार पर होता है।

(घ) परिवार–समाज का विनिश्चय होता है :– मनुष्य किस प्रकार के परिवार में और किस प्रकार के समाज में जन्म ग्रहण करेगा इसका निर्धारण भी मनुष्य के पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर किया जाता है। मनुष्य जीवन पर परिवार का समाज का पर्याप्त प्रभाव पड़ता है। परिवार सात्त्विक है राजसी है अथवा तामसी है यह स्थिति मनुष्य के जीवन को बहुत प्रभावित करती है। सात्त्विक परिवार में बालक शुभ कर्मो का आचरण सीखता है और देखता है कि घर के सभी सदस्य पूजा उपासना आदि करते हैं तथा पारस्परिक रूप से स्नेहपूर्ण व्यवहार करते हैं तो वह ऐसा ही करता है। जिस परिवार में सभी लोग सात्त्विक भोजन ग्रहण करते हैं तो बालक भी वैसा ही अनायास करता है तथा वह स्नान आदि से निवृत्त होकर भगवान की पूजा उपासना करता है। उसके उपरान्त सात्त्विक भोजन की आकांक्षा करता है। उसके परिवार की स्पष्ट छाप उसके सम्पूर्ण जीवन पर स्पष्ट रूप से देखी जा सकती है। जो बालक राजसी परिवार में उत्पन्न होता है। उस पर भी परिवार की तड़क भड़क, ऐश्वर्य, सम्पत्ति का प्रभाव स्पष्टरूपेण रहता है तथा ऐसे बालक अपने जीवन के लक्ष्य को उसी प्रकार तय करते हैं। जिस प्रकार परिवार के अन्य सदस्य जैसा व्यवहार करते हैं वैसा व्यवहार वह स्वयं भी करने लगता है। राजसी कर्मो में उसकी विशेष रूचि होती है। इसलिए मनुष्य को अपने परिवार और समाज का दायित्व निभाना पड़ता है। तामसी परिवारों में जन्म लेने वाले बालक पर परिवार की तमोगुणी प्रधान क्रियाऐं स्वयं ही प्रभावित करती हैं और वह इसी से प्रभावित होकर दुष्कर्म करता है। मांस मदिरा के सेवन की उसकी प्रवृत्ति हो जाती है। बालक परिवार के अन्य सदस्यों के तामसी क्रिया कलापों में लगा हुआ देखता है तब वह भी वैसा ही करता है। इस कारण हमारे पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर ही मनुष्य को परिवार और समाज की उपलब्धि होती हैं। परिवार समाज का अंग है, इसलिए जैसा समाज होता है, वैसे ही हमारे क्रियाकलाप होना आरम्भ हो जाते हैं। इस कारण पूर्व जन्मों के आधार पर परिवार और समाज का निर्धारण भी होता है।

(ङ) कुल और जाति का निर्धारण होता है :– विश्व में अनेक जातियां हैं। प्रत्येक धर्म में और समाज में जातियां हैं। हमारे भारत वर्ष में कुल तथा जाति की भरमार है और कुल और जाति के आधार पर ही उसे विशिष्ट और अविशिष्ट रूप में हम जान सकते हैं। आद्य शंकराचार्य जी ने यह कहा था कि पहले तो मानव जन्म दुर्लभ है अर्थात् मानव जन्म

परमात्मा की अतिशय कृपा से प्राप्त होता है। उसके उपरान्त पुरूष का जन्म भी मिलना कठिन है। अर्थात् उनकी दृष्टि में स्त्री को पुरूष से निम्न कहा गया है। वैसे स्त्री पूजनीया है और वह हमारी माता होती है, परन्तु पत्नी के रूप में वह पुरूष की उपासना करती है। पुरूष माता के ऋण से कभी उऋण नहीं हो सकता है। माता को करोड़ों लाभ देने के पश्चात् भी मनुष्य माता का आजीवन ऋणी रहता है। शंकराचार्य जी ने आगे कहा कि वह यदि ब्राह्मण हो तो इसमें परमात्मा की अतिशय कृपा ही माननी चाहिए। ब्राह्मण होकर भी यदि वह वैदिक धर्म को मानने वाला हो तो उस परमात्मा की साक्षात् कृपा समझनी चाहिए। हमारे जाति का और वर्ण का निर्धारण भी हमारे पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर ही होता है। संसार में अन्य सम्प्रदाय के मानने वालों में जाति की उच्चता और निम्नता रहती है। प्रत्येक सम्प्रदाय में कुछ निम्न श्रेणी की जातियां भी हैं और कुछ उच्च श्रेणी की जातियां भी हैं। इस प्रकार हमारे कुल और जाति का निर्धारण भी हमारे पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर ही होता है।

(च) शारीरिक स्थिति का निर्धारण भी होता है :–

आपने एक से बढ़कर एक सुन्दर तथा एक से बढ़कर एक कुरूप स्त्री–पुरूषों को देखा होगा तथा मध्यम श्रेणी की सुन्दरता का भी अवलोकन किया होगा। परमात्मा की सभी संतान हैं तो वह परमात्मा एक पुत्र को अतीव सुन्दर क्यों बनायेगा और किसी दूसरे को अत्यंत कुरूप क्यों बनायेगा ? एक परमात्मा की संतान होने के कारण वह पिता के रूप में यह कभी नहीं चाहेगा कि हमारी संतान सुन्दर न हो। यदि एक पिता की कोई संतान कुरूप भी हुई तो वह यही कहता है कि हमारा एक बेटा थोड़ा सा सांवला है तथा अन्य की तरह सुन्दर नहीं है। वह अपने कुरूप बेटे को भी सुन्दर ठहराने का प्रयास करता है। फिर परमात्मा तो किसी को भी कुरूप नहीं बनाना चाहता है? क्या कारण है कि इस संसार में सुन्दरता के साथ–साथ कुरूपता भी भरी पड़ी है।

बहुत विचार करने के उपरान्त यह तथ्य स्पष्ट होता है कि हमें हमारी सुन्दरता की तथा कुरूपता की प्राप्ति हमारे अपने पूर्व जन्मों के कर्मो के आधार पर होती है। यदि परमात्मा ने हमें सुन्दर बनाया है तो यह उसकी अतिशय कृपा ही है। पर इसमें हमारे पूर्व जन्मों के कृत शुभ कर्म ही आधार हैं। यदि परमात्मा ने किसी को कुरूप बनाया है तो यह कुरूपता भी हमारे पूर्व जन्मों के कर्मो के आधार पर ही हमें प्राप्त हुई है। कुरूप व्यक्ति जीवन भर कुढता है और उसके मन में भी सुन्दर होने की ललक रहती है। काश हम भी सुन्दर होते तो हमें भी लोग देखते रह जाते। इसके प्रतिकूल सुन्दर मनुष्य अपनी सुन्दरता पर जीवन भर गर्व करता है। इठलाता है और इतराता है। यह परमात्मा की दी गई वस्तु

उसके लिए वरदान रहती है। वह जहां भी रहता है। वहां फूलों का सा महकता है। लोग उसकी ओर अनायास ही आकर्षित होते हैं। हमारे शरीर का षौष्ठव परमात्मा की व्यवस्था के आधार पर हमारे पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के परिणाम स्वरूप हमें प्राप्त हो जाता है।

(छ) मनुष्य की प्रकृति का विनिश्चय भी होता है : मनुष्य की प्रकृति अर्थात् नेचर निर्धारण प्रमुखता से दो तथ्यों पर आधारित होता है। एक तो माता पिता के स्वभाव के आधार पर तथा दूसरे पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर। कथन का अभिप्राय यह है कि जो माता पिता की प्रकृति होती है उस प्रकृति का शिशु की प्रकृति पर बहुत प्रभाव रहता है। प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी प्रकार से अपनी माता पिता की प्रकृति से प्रभावित रहता है। माता पिता की प्रकृति यदि तामसी है तो पुत्र की प्रकृति अवश्य ही तामसी हो जाती है। माता पिता की प्रकृति राजसी है तो पुत्र की प्रकृति अनायास ही रजोगुण प्रधान होती है। माता पिता सात्त्विक स्वभाव के हैं तो पुत्र सात्विकता का विशेष प्रभाव रहता है। प्रकृति के साथ कई गुण और दोष भी माता पिता के शिशु में आ जाते हैं। रोगों को भी पैतृक रूप से शिशु प्राप्त कर लेता है। यह परमात्मा की एक विषद गूढ़ एवं रहस्यप्रद व्यवस्था है। इसी प्रकार यदि माता पिता की प्रकृति तमोगुण प्रधान होती है तो उसका बालक स्वभावता ही दुष्कर्म की ओर बढ़ जाता है। अपवाद भी हो सकते हैं परन्तु अधिक नहीं होते हैं। इसके साथ ही पूर्व जन्मों के कृत कर्म भी मनुष्य की प्रकृति के निर्धारण में सहायक रहते हैं। वह जैसा कर्म करता है उस पर पूर्व जन्मों के कृत कर्म प्रभावी रहते है। इस प्रकार मनुष्य की प्रकृति का विनिश्चय पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर होता है।

(ज) स्वस्थता और विकलांगता का विनिश्चय होता है :–

आपने अपने जीवन में स्वस्थ, अस्वस्थ तथा शारीरिक रूप से विकलांग शिशु अवश्य देखे होंगे। कभी आपने इस तथ्य पर गहनतापूर्वक विचार किया है कि एक शिशु स्वस्थ उत्पन्न होता है और दूसरा बीमार तथा तीसरा शिशु विकलांग पैदा होता है। यह तीनों के प्रकार के शिशु अपने शिशुकाल में अलग–अलग परिस्थितियों में क्यों उत्पन्न होते हैं? स्वस्थ शिशु प्रसन्न मुद्रा में खेलता रहता है। अस्वस्थ शिशु अधिकांश समय रोता रहता है। दुःख का आभास अवश्य करता होगा तभी वह रोता रहता है। इसी प्रकार एक विकलांग शिशु अनेक प्रकार के कष्ट सहता है तथा विभिन्न प्रकार से उसकी सेवा भी होती है। इस तथ्य पर हमें जब गहनता से विचार करते हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि यह तीनों स्थितियां पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के कारण ही शिशु को पृथक्–पृथक् रूप से प्राप्त होती हैं। इसका अन्य कोई कारण हमें प्रतीत नहीं होता है। मात्र एक ही कारण प्रतीत होता है कि हमनें पूर्व जन्मों में जैसे भी कर्म किये हैं उसी के अनुसार स्वस्थता, अस्वस्थता,

विकलांगता हमें प्राप्त हो जाती है। इन स्थितियों से शिशु को सुख दुख का स्पष्ट आभास होता रहता है और वह इसका आभास भी करता है। इस प्रकार हमारे पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर ही हमें स्वस्थता, अस्वस्थता और विकलांगता अनायास ही प्राप्त हो जाती है।

(झ) मनुष्य के जीवनवृत्त का आंशिक निर्धारण होता है :– सामान्य लोगों की ऐसी मान्यता है और यह मान्यता पुष्ट रूप में अवधारणा की तरह रहती है कि जीवन में जो घटनाऐं, स्थितियां आदि होनी हैं वे सबकी सब पहले से ही निर्धारित होती हैं। अर्थात् सम्पूर्ण जीवनवृत्त का निर्धारण परमात्मा की व्यवस्था में पूर्व में ही हो जाता है। कथन का अभिप्राय यह है कि मनुष्य अपने सम्पूर्ण जीवन में क्या क्या करेगा ? कैसे कैसी घटनाऐं उसके साथ घटित होंगी यह पहले ही तय हो जाता है। अर्थात् उसका सम्पूर्ण जीवनवृत्त पूर्व नियोजित होता है। यह अवधारणा बहुत बलवती रहती है, परन्तु भ्रामक है। मनुष्य के जीवनवृत्त का आंशिक निर्धारण उसके पूर्व जन्मों के कृत कर्म ही होते हैं। अवशेष आंशिक निर्धारण मनुष्य के द्वारा इस जन्म में किये गए कार्यो के आधार पर निश्चित किया जाता है। पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर पूर्व में जिन तथ्यों का निरूपण हुआ है उनका निर्धारण होता है। यह वह तथ्य है जिनका मनुष्य के जीवन से सम्बंध रहता है।

हम जो भी इस जन्म में करते हैं वे कर्म फल देने को तत्पर हो जाते हैं और मनुष्य का जीवनवृत्त स्वतः ही परिवर्तित हो जाता है। इस कारण मनुष्य का जीवनवृत्त पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर आंशिक रूप से निर्धारित होता है, पर उसका विनिश्चय इस जन्म के कर्मो के आधार पर ही होता है। यह तथ्य अत्यंत रहस्यप्रद और गोपनीय है जिसे हमें प्रयोगात्मक रूप से मानना पड़ता है। एक साधक मनुष्य साधना के द्वारा अपने जीवन वृत्त को पर्याप्त रूप से परिवर्तित कर देता है। यदि वह चाहें तो पूर्वजन्मों के कर्मो को आंशिक रूप से अथवा सिद्ध होकर ज्ञानरूप अग्नि में सम्पूर्णता भस्म कर सकता है।

पूर्वजन्मों के कर्मो के आधार पर जिन जिन प्रमुख तथ्यों का निश्चित निर्धारण होता है उसका कुछ वर्णन उपरोक्त प्रकार से प्रस्तुत किया गया है। चूंकि इस जन्म के पूर्व भी हमारे असंख्य जन्म हो चुके हैं। इस कारण अन्य भी तथ्यों का निर्धारण पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर होता है। जैसे कौन सी घटना किस समय और कब होगी ? यह किस प्रकार होगी? यह भी सबका सब विस्तृत रूप से पूर्व जन्मों के आधार पर निर्धारित हो जाता है। वस्तुतः मनुष्य का सम्पूर्ण जीवन अंधकार की गर्त में डूबा हुआ है परन्तु उसके अपने कर्म ही उसके भविष्य के अंधकार को प्रकाशित कर सकते हैं और चाहें तो वह अपने जीवन को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित कर सकता है और चाहें तो स्वयं को अंधकार के

रूप में परिवर्तित करके पतन की ओर जा सकता है। इसलिए उसके पूर्व जन्म के कृत कर्म तो आधारभूत तथ्य हैं, परन्तु इस जन्म के कर्म भी उसके भाग्य के निर्धारण में मूलभूत तथ्य हैं।

(4) परमात्मा की अदृश्य और विस्मयकारी कर्म व्यवस्था :–

परमात्मा की सम्पूर्ण कर्म व्यवस्था अव्यक्त, अदृश्य, अप्रत्यक्ष है, फिर भी आश्चर्यजनक रूप से प्रकट हो जाती है। वह सम्यक्रूपेण ठीक ठीक विस्मयकारी रूप से निरन्तर चलती रहती है। इसमें कोई त्रुटि नहीं रहती है। इस व्यवस्था का सम्पूर्ण कार्य अव्यक्त है अदृश्य रूप से चला करता है परन्तु अव्यक्त तथा अदृश्य व्यवस्था जगत में व्यक्त होती है, दृष्टि में आती है, प्रतीत होती है। एक साधक इस परमात्मा की अदृश्य और विस्मयकारी व्यवस्था का अनुभव करता है और अपने को संयमित कर लेता है। इसी प्रकार एक सामान्य पुरूष इस विस्मयकारी व्यवस्था का अनुभव नहीं करता है तथा अधिकांशतः संसारिक कारणों से सुखी और दुखी हुआ करता है। परमात्मा की यह अदृश्य और विस्मयकारी व्यवस्था बहुत वृहद् है और तथ्यों के आधार पर चलती रहती है। जिन तथ्यों के आधार पर परमात्मा की अदृश्य और विस्मयकारी व्यवस्था चलती है उनमें से कुछ भावों का आप अवलोकन कीजिए–

(क) कर्म व्यवस्था अदृश्य एवं अव्यक्त है :–

परमात्मा की कर्म व्यवस्था अव्यक्त है, अदृश्य हैं। अप्रत्यक्ष है, क्योंकि वह हमें आंखों से प्रतीत नहीं होती अथवा श्रोत्रादिक इन्द्रियों से ग्रहण की नहीं जा सकती। जैसे हमारा संविधान है वह समग्र रूप से लिखित है। संविधान हमें प्रतीत होता है और वह संहिता के रूप में हमारे समक्ष है। संविधान के प्राविधान तथा नियमों के अधीन चलने वाली कार्रवाई तथा कार्रवाई का विनिश्चय करने वाले तथ्य और प्रक्रिया व सबकी सब प्रतीत होती है। दिखाई पड़ती है। संविधान में अनेक विषयों का उल्लेख है और उसकी संचालन व्यवस्था, अपराध के स्वरूप, अपराधकारित करने पर उसके दंड का, दंड के निर्धारण हेतु प्रचलित कार्रवाई का पूरा का पूरा विवरण स्पष्टरूपेण वर्णित किया जाता है। अनेक पुस्तकों, नियमों, कानूनों एवं संहिताओं के रूप में हमें वह प्रतीत होता है। हम यह जान सकते हैं कि किस अपराध के कारित करने पर किस प्रकार की कार्रवाई संचालित की जाएगी और उसका क्या परिणाम होगा ? यह सबका सब लिखित रूप से दिखाई पड़ता है अर्थात् दृश्य रहता है परन्तु परमात्मा की कर्म व्यवस्था तथा कर्म के आधार पर उसके परिणाम की व्यवस्था अव्यक्त है और अदृश्य है। हम निश्चित रूप से यह नहीं जान सकते हैं कि हमारे किस

कर्म का क्या परिणाम होगा? और वह हमें कब और किस प्रकार प्राप्त होगा। यह सबका सब अव्यक्त है अर्थात् व्यक्त नहीं है। अदृश्य है अर्थात् हमें दीखता नहीं है।

शास्त्रों में कुछ इस सम्बंध में हमें वर्णन प्राप्त हो जाता है कि हमारे अमुक कर्म का अमुक परिणाम होगा। अमुक यज्ञ से, अमुक प्रकार के कर्म से हमें यह यह फल प्राप्त होंगे ऐसा उल्लेख शास्त्रों में कई स्थलों पर आता है। जैसे कौन से दुष्कर्म के पश्चात् कौन सा नरक हमें प्राप्त होगा यह सब भी शास्त्रों में उल्लिखित है। परन्तु इसका ठीक से अर्थात् सम्यक्रूपेण विनिश्चय होना संभव नहीं है। हमारा कौन सा दुष्कर्म और कौन सा सत्कर्म कब फलदायी हो जाएगा इसे जाना जा पाना असंभव है। इसलिए परमात्मा के द्वारा संचालित की जाने वाली यह वृहद् कर्म व्यवस्था अव्यक्त एवं अदृश्य हैं जो हमारी अर्थात् मानव मात्र की संज्ञानता में कदापि नहीं आ सकती है।

(ख) परमात्मा की कर्मव्यवस्था निश्चित परिणामी हैः– हमारे समस्त कर्मो का निश्चित परिणाम हमें प्राप्त होता है। वह परमात्मा की कर्म व्यवस्था की विशेषता है। हम जो भी कर्म करते हैं वे परिणाम अवश्य देते हैं। अर्थात् प्रत्येक कर्म का निश्चित परिणाम होता है। यह निश्चित परिणाम होने के कारण ऐसा कहा जाता है कि परमात्मा की जो व्यवस्था है वह निश्चित परिणामी है। लोगों के मन में, समाज में यह अवधारणा सामान्य रूप से व्याप्त है कि हमें कर्मो का कोई परिणाम प्राप्त नहीं होता। समाज में अनेक दुष्कर्मी, पापाचारी, अत्याचारी, कुमारगी लोग अपने द्वारा कुकृत्यों का और असामाजिक कर्मो का आचरण किया करते हैं परन्तु उन्हें परमात्मा का कोई दंड प्रत्यक्ष रूप से नहीं प्राप्त होता वह लगातार, निरन्तर अपने कुकृत्यों का अनवरत रूप से सम्पादन करते हैं परन्तु परमात्मा उन्हें दंड नहीं देता है।

इसके प्रतिकूल यह भी अवधारणा सामान्य रूप से रहती है कि हम देवी देवताओं की उपासना करते हैं और उपासना करने के उपरान्त भी हमारे अनेक संकटों का निवारण नहीं हो पा रहा है तथा हमारी वांछित सांसारिक वस्तुऐं ओर स्थिति प्राप्त नहीं हो पा रही है। ऐसा भी विचार सामान्य लोगों के मन मे ंरहता है, परन्तु इस अवधारणा को हमें अपने मस्तिष्क से निकाल देना चाहिए। परमात्मा की कर्म व्यवस्था में हमारे प्रत्येक कार्य को निश्चित रूप से अंकित किया जाता है और उसे अंकित करके उसकी समीक्षा होती है तथा उसी आधार पर हमारे कर्मफल का निर्धारण होता है। जगत में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो परमात्मा की कर्म व्यवस्था का अतिक्रमण कर सकें। चाहे वह सम्राट हो अथवा भिखारी हो। सभी पर पूरी तरह से परमात्मा की व्यवस्था लागू रहती है। हम उससे बच नहीं सकते। सम्राट, विशिष्ट अधिकारी अथवा अन्य कोई भी अपने कुकृत्यों के परिणाम को

अवश्य भोगेगा। सम्राट भी परमात्मा की व्यवस्था के निश्चित प्रभाव में रहता है और भिखारी भी रहता है। इस प्रकार परमात्मा की कर्म व्यवस्था निश्चित परिणामी है।

(ग) परमात्मा की कर्म व्यवस्था कर्म पर आधारित है :–

मनुष्य की प्रत्येक स्थिति में, प्रत्येक कार्य में दो प्रकार के कर्मो का साथ रहता है। एक तो पूर्व जन्म में किये गए कर्मो का समुच्चय रहता है तथा दूसरे इस वर्तमान जन्म में कि गए कृत कर्मो का समुच्चय भी रहता है। मनुष्य का समग्र जीवन इन्हीं दो प्रकार के कर्मो पर चला करता है। हमारे पूर्व जन्मों में हमारे द्वारा जो भी कर्म किये गए हैं वह हमें जीवन भर प्रभावित करते हैं। यह परमात्मा की कर्म व्यवस्था है कि वह हमारे पूर्व जन्म के कृत कर्मो का परिणाम कब देगा? उसी प्रकार इस जन्म के कृत कर्मो का परिणाम कब हमें प्राप्त होगा? यह भी निश्चित नहीं होता है। वह मात्र परमात्मा की कर्म व्यवस्था के आधार पर निश्चित किया जाता है। हमने आज तक जो भी कर्म किये हैं वह सबके सब संचित रहते हैं, उनका अनुकूल तथा प्रतिकूल परिणाम हमें प्राप्त होता है। इसी को सामान्य भाषा में भाग्य कहते हैं। जैसे हमारे संचित कर्मो में जो कर्मफल अर्थात् परिणाम देने को उन्मुख हो जाते हैं अथवा परिणाम देने लगते हैं उनसे हमें फल स्पष्ट रूप से प्रतीत होने लगते हैं। जैसे हमारे अशुभ कर्मो के परिणाम से हमें प्रतिकूल स्थितियां प्राप्त होने लगती हैं तो हम सामान्य रूप से यह कहते हैं कि हमारा भाग्य सही नहीं है। इसी प्रकार हम जब शुभ कर्मो के परिणाम से शुभ फल प्राप्त करते हैं तो हमें अनुकूलता प्राप्त होने लगती है और हम यह तथ्य मानकर चलते हैं कि हमारा भाग्य ठीक कार्य कर रहा है। हम भाग्यवान हैं। हमारे स्टार सही हैं, अनुकूल हैं।

यह परमात्मा की कर्म व्यवस्था सम्पूर्णता से कर्मो पर ही आधारित है। हमारे कर्म ही भाग्य का निर्माण करते हैं। जिसे हमें भाग्य कहते है वे हमारे कर्म का फल हैं जो हमें प्रतीत होते हैं। कर्म के दोनों प्रकार के संचय को अर्थात् जन्म के पूर्व कृत कर्म तथा इस जन्म के कृत कर्मो को हम देख नहीं सकते हैं। यह मात्र परमात्मा ही अपनी व्यवस्था में देखते हैं परन्तु उनका परिणाम हमें स्पष्ट मिलता है और प्रतीत होता है। यह सभी व्यवस्था कर्मो पर ही आधारित है। अदृश्य होकर कर्मफल के रूप में देखा जा पाना संभव है। हमें इस व्यवस्था को समझना चाहिए और कर्म की गति को समझ कर अपने भाग्य के आधार को जानना चाहिए। हम जब इसे नहीं समझते हैं तो अपने भाग्य का रोना रोते हैं परन्तु भाग्य तो कर्मो से बनता है। भाग्य का आधार ही कर्म है।

(घ) परमात्मा हमारे कर्मो को साक्षात् देखता है :–

आपने कई महानुभावों को यह कहते हुए सुना होगा कि हमने जो कार्य किया वह इतना गोपनीय रहा कि कोई भी उसे जान नहीं पाया है। हम ऐसा कार्य करते हैं कि किसी को उसकी खबर नहीं रहती है। जो कार्य हम दाये हाथ से करते हैं उसे हमारा बायां हाथ नहीं जान पाता आदि आदि। वाक्यों का प्रयोग करके हम कर्म को छिपकर करने की बात करते रहते हैं। हम यह नहीं जानते कि हम जो भी कार्य करते हैं उन सबका प्रत्यक्ष रूप से दर्शन परमात्मा करता है। हम अपने किसी भी कार्य को परमात्मा से छिपा कर नहीं कर सकते हैं। वह सब कुछ देख रहा है। हम जो भी करते हैं उसका वह प्रत्यक्ष दर्शन करता है। संसार में जितनी भी भाषाऐं हैं, जितने भी कार्य के प्रकार हैं जितनी भी कार्य की विधाएं हैं, जितने भी विषय हैं, जितने भी प्रकार से कार्य होता है। वे सबके सब परमात्मा के ज्ञान में हैं। अर्थात् परमात्मा की उस बारे में संज्ञानता है। उससे कोई भी कार्य, कोई भी गतिविधि, कोई भी चेष्टा छिपी नहीं रह सकती। वह हमारे सभी कार्यो को प्रत्यक्ष रूप से देखता है। उससे छिपाकर कोई भी प्राणी कोई भी कार्य कदापि नहीं कर सकता है। वह हमारी अर्थात् समस्त जीवों की सभी चेष्टाओं को प्रकट होकर देखता रहता है ंजिस प्रकार किसी भी कार्य का निरीक्षण किया जाता है तथा उसका निरीक्षण के उपरान्त आंकलन होता है उसी प्रकार परमात्मा हमारे कार्य को साक्षात् प्रकट होकर देखता रहता है। उसमें कोई भी कार्य कदापि छिपाया नहीं जा सकता है। इसी तथ्य को हम इस प्रकार भी कह सकते हैं कि वह परमात्मा हमारे समस्त कर्मो को साक्षात् प्रकट होकर देखता है।

(ङ) प्रत्येक कर्म के अंकन की विशिष्ट व्यवस्था हैः–

इस संसार में असंख्य मनुष्य हैं और असंख्य जीव भी रहते हैं, परन्तु इन समस्त मनुष्यों के कर्मो का लेखा जोखा परमात्मा की व्यवस्था में रहता है। जैसे हमने देखा होगा कि जगत में किसी भी कार्य का जब प्रतिपादन होता है तब कार्य के परिणाम को देखकर व्यवस्था करनी पड़ती है। जैसे किसी भोज में जितने भी व्यक्ति आमंत्रित होते हैं उन सभी आमंत्रित सदस्यों के अनुसार भोजन का प्रबन्ध किया जाता है ताकि सभी को सुव्यवस्थित रूप से भोजन प्राप्त हो सके। वैसे ही परमात्मा ने मनुष्य के प्रत्येक कर्मो के स्पष्ट अंकन की सुचारू वृहद् व्यवस्था की है। यह व्यवस्था हम देख नहीं सकते। हमारा प्रत्येक कर्म परमात्मा की कर्म व्यवस्था में अंकित किया जाता है।

कर्म तीन प्रकार के हैं, जिन्हे कर्म, अकर्म तथा विकर्म कहा जाता है। शास्त्रसम्मत कर्मो को कर्म कहा जाता है तथा शास्त्र के प्रतिकूल कर्मो को विकर्म कहा जाता है जो कर्म सर्वथा त्याज्य होते हैं वे ही हमारे समक्ष विकर्म के रूप में आते हैं। जब मनुष्य साधना की पराकाष्ठा पर जाकर ऐसे कर्मो का सम्पादन करता है कि वे कर्म परिणाम देने में असफल हो जाते हैं तो उन कर्मो को हम अकर्म कहते हैं। इस प्रकार तीनों ही कर्मो का अंकन परमात्मा की वृहद् व्यवस्था में निश्चितरूपेण किया जाता है। यह प्रश्न अत्यंत विचारणीय है कि हम नित्य क्षण प्रतिक्षण जो भी कर्म करते हैं वह सबके सब अंकित किये जाते हैं। उनमें किसी भी प्रकार की त्रुटि नहीं रहती है और वह सम्यक्रूपेण पूरी तरह से दर्ज होते हैं। इस तथ्य पर जब हम गहनतापूर्वक विचार करते हैं तो हमें परमात्मा की इस व्यवस्था का आभास होता है कि यह प्रत्येक कर्म के अंकित किये जाने की वृहद व्यवस्था हमारे समक्ष है।

(च) हजारों पूर्व जन्मों के कृत कर्मो का सम्यक् लेखा जोखा :–

हम जब किसी विशिष्ट कार्यालय की व्यवस्था देखते हैं तो हमें यह ज्ञात होता कि वहां पर वर्षो पूर्व जिस कार्य को सम्पादित किया गया था वह वर्ष के क्रम के अनुसार संचित है। लिखित है। हम जिस कार्य का जिस वर्ष का लेखा जोखा चाहते हैं। हम उस वर्ष की पंजिका को देखकर जान सकते हैं। ऐसी व्यवस्था अब सभी कार्यालयों में है, जिसे कम्प्यूटरीकृत कहा जाता है और भी नवीन व्यवस्थाऐं हैं। जिनसे संसार के किसी भी विषय की जानकारी को हम प्राप्त कर सकते हैं।

कथन का अभिप्राय यह है कि समस्त प्रकार की समस्त विषयों की जानकारी वर्तमान में संकलित है। परमात्मा की कर्म व्यवस्था का एक अंग अति विशिष्ट है जिसमें मनुष्य के हजारों जन्मों का संकलन रहता है। अर्थात् हम किस जन्म में क्या थे? कहां थे? हमारी क्या स्थिति थी? हम कितनी बार पुरूष रहे कितनी बार स्त्री रहे? यह सबका सब लेखा जोखा परमात्मा की कर्म व्यवस्था में संकलित रहता है। हजारों जन्मों में जो हमारे असंख्य कर्म हैं। वे भी समग्रता से अंकित रहते हैं। संकलित रहते हैं। करोड़ों अरबों जीवों का हजारों जन्मों का असंख्य कर्मो का लेखा जोखा संकलित करने की परमात्मा की व्यवस्था कितनी विशालतम होगी इसका आप सहजता से अनुमान लगा सकते हैं। आप विचार करें इस विशाल वृहद व्यवस्था के लिए परमात्मा ने कितने लोगों को लगा रखा होगा। यह साधारणतया विचार किया जा सकता है। सबसे विस्मयकारी तथ्य यह है कि यह व्यवस्था हमें दीखती नहीं प्रतीत नहीं होती है, अदृश्य है, अव्यक्त है, व्यक्त नहीं है। स्पष्ट रूप से परिलक्षित भी नहीं होती है परन्तु सुचारू रूप से संचालित रहती है। बिना किसी त्रुटि के इसका निरन्तर सम्पादन चला करता है। यह तथ्य अत्यंत विस्मयकारी है।

(छ) कर्म अहस्तान्तरणीय हैं :–

प्रत्येक मनुष्य कर्म करता है उन कर्मो का परिणाम उसे स्वयं ही प्राप्त हो जाता है। अर्थात् भुगतना पड़ता है। ऐसा नहीं है कि कोई अन्य कर्म करे और उसके परिणाम अर्थात् फल का उपभोग अन्य व्यक्ति करें। इस कारण इसे अर्थात् कर्मो के फल को अहस्तान्तरणीय कहा जाता है। मनुष्य को अपने द्वारा किये गए समस्त कर्मो को स्वयं ही भुगतना पड़ता है तथा स्वयं ही उसका आनन्द भी वह प्राप्त करता है। जैसे जगत में हमारे द्वारा कमाये गए धन से हमारे परिवार, सगे सम्बंधी तथा सम्पर्कित लोग लाभान्वित रहते हैं तथा धन तो हमारा होता है परन्तु उससे अन्य लोगों को भी संसार में सुख प्राप्त होता है। परन्तु हम जब कोई अपराध करते हैं तो हमें उसके परिणाम में कुफल अर्थात् कष्ट स्वयं भुगतना पड़ता है। मनुष्य जो कर्म करता है चाहें वह शास्त्रसंगत कर्म हो और चाहें अशास्त्र संगत कर्म हो अथवा सर्वथा त्याज्य कर्म हो उस सबका परिणाम उसी मनुष्य को प्राप्त होता है। इसलिए कर्मफल को अहस्तान्तरणीय कहा जाता है।

इस तथ्य को इस प्रकार भी हम कह सकते हैं कि मनुष्य अपने कर्मो का स्वयं भोक्ता होता है। उसके कर्म के परिणाम को अन्य कोई दूसरा नहीं भोग सकता है। हम अपने कर्म के फलों को अर्थात् परिणाम को अन्य लोगों को हस्तान्तरित नहीं कर सकते हैं। हमने जो भी कर्म किए हैं वह सब परमात्मा की कर्म व्यवस्था में अंकित रहते हैं तथा उनको समयानुकूल फल देने का कार्य कर्म व्यवस्था के अधीन चलता रहता है। यह सम्पूर्ण कर्म व्यवस्था पूरी तरह से त्रुटिरहित है तथा सम्यक् प्रकार से निर्बाध गति से चलती रहती है कभी समाप्त नहीं होती है। हम सभी को यह तथ्य निश्चितरूपेण अपने मन और बुद्धि में बिठा लेना चाहिए कि हम जो भी शुभ और अशुभ कर्म करेंगे उनके परिणाम का दायित्व हमारे अपने ऊपर ही होगा। इसलिए प्रत्येक मनुष्य को शुभ अशुभ कर्मो के अन्तर को जानकर शुभ कर्मो का सम्पादन करना चाहिए और अशुभ कर्मो का परित्याग करने का निश्चित प्रयास करना चाहिए।

(5) मनुष्य के कर्मो का अंकन कैसे होता है? और उन्हें कौन करता है ?

आप को यह जानकर आश्चर्य होगा कि करोडों अरबो मनुष्यों के हजारों लाखों कर्मो का लेखा जोखा परमात्मा की व्यवस्था में रहता है। यह लेखा जोखा कैसे रहता है ? यह एक रहस्यप्रद तथ्य है। जैसे वर्तमान में अनेक प्रकार की विभिन्न सूचनाओं के संकलन के लिए बहुत से उपकरण लगाने पड़ते हैं और उनके सुचारू संचालन हेतु विद्युत की अनवरत् व्यवस्था करनी पडती है ताकि वे सूचना संग्राही यंत्र ठीक ठीक से काम करके सूचनाओं

का समय से अंकन कर सकें। सुचारू संचालन से सूचनाऐं संकलित की जाती हैं परन्तु कभी कभी कतिपय कारणों से, विद्युत के अवरोध के कारण जिन उपकरणों से हम सूचना का संकलन करते हैं वे बंद भी हो सकते हैं। इससे सूचनाओं के संग्रहण का कार्य रूक जाता है अथवा सूचना संग्रहित करने वाले यंत्रों में किसी कारण खराबी आ जाने पर भी सूचनाऐं एकत्र करने में अनेक प्रकार की बाधाऐं आती हैं। आपने देखा होगा कि दूरदर्शन अथवा अन्य प्रकार के प्रसारण होते होते अचानक रूक जाते हैं। अर्थात् उनमें कुछ बाधाऐं आ जाती हैं। जगत के उपकरणों में अवरोध आना, उत्पन्न हो जाना एक सामान्य तथ्य है परन्तु परमात्मा ने प्रत्येक मनुष्य के कर्मो के संकलन हेतु जो व्यवस्था की है वह हजारों लाखों वर्षो से सतत निरन्तर अविरल सुचारू रूप से चल रही है उसमे तनिक भी गड़बड़ी अवरोध उत्पन्न ही नहीं हुआ है। आज भी करोड़ों मनुष्यों की क्षण प्रतिक्षण कर्मो के संकलन की व्यवस्था बिना किसी अवरोध के निर्बाध रूप से चल रही हैं आगे आने वाले भविष्य में जब तक यह मानव जाति है तब तक यह व्यवस्था सामान्य रूप से कार्य करती रहेगी इसमें कुछ भी रंच मात्र भी बाधा नहीं आयेगी। यह वृहद् व्यवस्था पृथ्वी पर जन्म लेने वाले शिशु का तथा मृत्यु को प्राप्त होने वाले प्रत्येक मनुष्य के लेखा जोखा संग्रहण का पूरा दायित्व संभाले हुए है। अब आप अवश्य जानने के इच्छुक होंगे कि वे कौन से उपकरण हैं? जिनके माध्यम से परमात्मा ने अति विशाल व्यवस्था को संभाल रखा है। उन उपकरणों के नाम हैं –

1 – सूर्य 2– अग्नि 3– आकाश 4– वायु 5– इन्द्रियां 6– चन्द्रमा

7– संध्या 8– रात्रि 9– दिवस 10– दिशाऐं 11– जल 12– पृथ्वी

13– काल 14– धर्म।

उक्त शक्तियां किस प्रकार से हमारे कर्मो का अंकन करती है? उसको भी समझना आवश्यक है। इसी के लिए निम्नांकित तथ्य प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

1– सूर्य :– सृष्टि के आदिकाल से अर्थात् सृष्टि के उत्पत्ति के समय सूर्य का निर्माण हुआ और वह तबसे निरन्तर गतिमान है। इसकी जो गति है, निर्धारित कर दी गई है। वह आज भी वैसी ही है यह निरन्तर क्रमवार पृथ्वी के प्रत्येक भाग को प्रकाश देने का कार्य करता है। सूर्य की उपासना के कई प्रकरणों का उल्लेख पवित्र वेदों में आया है। इसकी उपासना इसी कारण होती है क्योंकि उसने समस्त विश्व को प्रकाश दिया है और बिना विश्राम के गति कर रहा है। सूर्य को देवता की संज्ञा दी जाती है और इसका देवताओं में विशेष स्थान है। पुराणों में सूर्य के सम्बंध में कई कथाएं आती है। यह सृष्टि के आदिकाल से

प्रत्येक मनुष्य गतिविधि अर्थात् कर्म पर निरन्तर अपनी दृष्टि रखे हुए है तथा प्रत्येक मनुष्य के क्रियाकलापों तथा प्रसूचना का संकलन करके परमात्मा को उपलब्ध करा देता है। इस प्रकार मनुष्यों के कर्मो के अंकन में सूर्य विशेष भूमिका निभाते हैं।

2– अग्नि : अग्नि को हम सभी जानते हैं। प्रकाश और तापमान देना इसके दो प्रमुख कार्य हैं। प्रत्येक मनुष्य के शरीर में अग्नि के कारण ही पाचन क्रियाऐं संभव हो पाती हैं और शरीर संचालन हेतु भी इसका बहुत उपयोग है। शरीर का तापमान निश्चित है। इस निश्चित तापमान से ऊपर या नीचे होना शरीर की स्थिति हेतु खतरनाक माना जाता है। अग्नि पंचमहाभूतों में एक तत्त्व है। उससे हमारे जीवन की अनेक आवश्यकताऐं भी पूरी होती हैं परमात्मा ने उसे शरीर में प्रकट करके शरीर के कर्मो पर दृष्टि रखने तथा इसकी प्रसूचना परमात्मा को उपलब्ध कराने का कार्य अग्नि को समर्पित किया है। अग्नि को देवता भी माना जाता है तथा अग्नि देवता की उपासना भी की जाती है। महाभारत महाकाव्य में इसके सम्बंध में अनेक उल्लेख प्राप्त होते हैं तथा पौराणिक ग्रंथों में भी अग्नि के सम्बंध में और उसके भेदों के बारे में विस्तार से वर्णन मिलता है। इस प्रकार अग्नि भी हमारे समस्त कर्मो का लेखा जोखा अंकित करने में विशेष स्थान रखती है।

3– आकाश : आकाश सर्वत्र उपस्थित है। यह पंच महाभूतों का एक विशिष्ट तत्त्व है। इस संसार में जो रिक्तता अर्थात् पोलापन है उसे ही आकाश का स्वरूप मानना चाहिए। हमारे शरीर में अनेक स्थानों पर जो रिक्तता है जिससे शरीर की अनेक आंतरिक और बाह्य क्रियाऐं सम्पन्न होती हैं वे सभी आकाश के कारण सम्पन्न होती हैं। आकाश हमारे शरीर में भी उपस्थित रहता है तथा वह हमारे कर्मो पर दृष्टि रखता है। इस प्रकार मानव शरीर में आकाशरूपी तत्त्व परमात्मा के द्वारा डाला गया है, जिससे हमारे प्रत्येक क्रियाकलाप की सूचना परमात्मा को जाती है।

4– वायु : सर्वत्र उपस्थित और सर्वत्र पहुंच जाने वाली वायु हमारे जीवन का आधार है। पंच महाभूतों का एक विशिष्ट तत्त्व है। मनुष्य शरीर में पांच प्रकार की वायु रहती है, जिसे प्राण, अपान, समान, उदान तथा व्यान कहा जाता है। यह प्राण वायु हमारे शरीर में उपस्थित रहती है जो हमारे जीवन तथा चेतना का आधार मानी जाती है। वायु को भी देवता माना जाता है। यह हमारे शरीर में तो उपस्थित रहती है इसके अतिरिक्त समस्त संसार में भी इसकी उपस्थिति है। हमारे शरीर में उपस्थित रहकर और संसार में सर्वत्र रहकर भी वह मनुष्य के प्रत्येक कर्मो का लेखा जोखा अंकित करती है तथा उसको परमात्मा की व्यवस्था में वहां तक पहुंचाती है।

5– इन्द्रियां : मनुष्य के सभी कर्मो की सूचनाओं को प्रेषित करने के विशेष उपकरण है। मनुष्य शरीर में दस इन्द्रियां होती हैं, जिन्हें पांच कर्मेन्द्रियां और पांच ज्ञानेन्द्रियां कहा जाता है। पांच ज्ञानेन्द्रियां कान, नेत्र, नासिका, त्वचा, जिह्वा के रूप में हैं तथा पांच कर्मेन्द्रियां वाणी, हस्त, पाद, उपस्थ तथा पायु के रूप में मनुष्य में रहती है। इनको बाह्यकरण भी कहा जाता है। इनके द्वारा मनुष्य अनेक प्रकार के कर्मो का सम्पादन करता है। यह इन्द्रियां मनुष्य के द्वारा किये गए कर्मो का संकलन करके परमात्मा तक इसको पहुंचाती है और परमात्मा के द्वारा निर्धारित की गई सूचना संकलन की व्यवस्था में अपना महत्वपूर्ण योगदान देती हैं।

6– चन्द्रमा : चन्द्रमा को सभी नक्षत्रों का स्वामी कहा जाता है। इसका प्रकाश विशिष्ट है। इसलिए इसे विशिष्ट तत्त्व माना गया है। चन्द्रमा में जो प्रकाश है वह प्रकाश भी परमात्मा के द्वारा प्रदान किया गया है। परमात्मा ने चन्द्रमा को प्रकाश देकर यह आदेश दिया कि समग्र जगत की वनस्पतियों को पुष्ट करें तथा संसार में क्रमशः प्रकाश देकर मनुष्य के समस्त कर्मो की सूचनाएं मुझ तक भेजे। तब से चन्द्रमा परमात्मा द्वारा दिए गए इस आदेश के क्रियान्वयन में लगा हुआ है और जगत के समस्त मनुष्यों के कर्मो की सूचनाऐं परमात्मा तक पहुंचाता है। उसका यह कार्य अबाध गति से चलता रहता है। मनुष्य के द्वारा रात्रि के समय जो नाना प्रकार के कर्म किये जाते हैं उन पर चन्द्रमा की दृष्टि रहती है और चन्द्रमा इसप्रकार मनुष्य के कर्मो पर दृष्टि रख उसके कर्मो की प्रसूचना परमात्मा को पहुंचाता है।

7– संध्या : सूर्य के अस्त होने तथा रात्रि के पूर्णरूपेण न आने के काल को संध्याकाल कहा जाता है। इस प्रकार जगत में एक व्यक्ति का कार्यकाल समाप्त होने पर दूसरे की नियुक्ति हो जाती है। उसी प्रकार संध्याकाल का कर्म है। वह सूर्य के अस्त होने तथा रात्रि आने के पूर्व जगत के मनुष्यों के क्रियाकलापों और समग्र चेष्टाओं का अंकन करती है। इस प्रकार संध्याकाल भी मनुष्य के कर्मो को अंकित करके उसकी सूचना परमात्मा को प्रेषित करती है। काल की दृष्टि से यह समय भी अत्यंत महत्वपूर्ण समझा जाता है जिसमें हमें परमात्मा की सान्निध्यता में जाने का अवसर प्राप्त होता है।

8– रात्रि : साधारणतया रात्रि में मनुष्य को जो क्रियाकलाप हैं वे रात्रि नामक काल के द्वारा एकत्रित किये जाते हैं। मनुष्य अधिकांश अवैधानिक असमाजिक कर्म जिन्हें सामान्य भाषा में दुष्कर्म कहा जाता है का सम्पादन रात्रि में ही करने का प्रयास करता है और यह विचार करता है कि रात्रि के अंधकार में कोई भी उसके द्वारा किये गए असमाजिक और अवैधानिक तथ्यों को देख नहीं पाएगा। परन्तु परमात्मा की व्यवस्था के अधीन रात्रि में जो भी कर्म किये जाते हैं वह रात्रि नामक कालरूपी सत्ता उन समग्र क्रियाकलापों को देखकर

और उसकी प्रसूचना परमात्मा को प्रेषित करती है। इस प्रकार यदि किसी के अंतःकरण में यह भाव है कि मेरे द्वार रात्रि में जो कर्म किये जाते हैं वह देखे नहीं जाते तो इस अवधारणा को मनुष्य को हम अपने अंतःकरण से निकाल देना चाहिए। रात्रि के अंधकार में जिन कर्मो का सम्पादन होता है वे भी परमात्मा की व्यवस्था में सम्यक्रूपेण अंकित किये जाते हैं तथा उसी के आधार पर मनुष्य के कर्मफल का विनिश्चय होता है।

9– दिवस : मनुष्य अपने समस्त क्रियाकलापों का अधिकतर भाग दिन में ही सम्पादित करता है। इस कारण परमात्मा ने सूर्य के साथ दिवस को भी विशेष रूप से मनुष्य के कर्मो के संकलन हेतु नियुक्त किया है। वर्तमान में दिन में मनुष्य अनेक प्रकार की आपाधापी से कर्म करता रहता है। वह चाहें जितनी तीव्रता से कर्म करे उसका अंकन स्वतः ही दिवस नाम की सत्ता करती है। यह तथ्य विचार करने पर अत्यंत आश्चर्य होता है कि संसार में असंख्य मनुष्यों के असंख्य क्रियाकलापों का अंकन दिवस नाम की सत्ता करती है तथा वह मनुष्य के समस्त क्रियाकलापों को अंकित करके परमात्मा को उसकी सूचना प्रेषित करती है।

10– दिशाऐं : दिशाऐं दस होती हैं, जिनमें चार दिशाऐं प्रमुख होती है, जिन्हें पूरब, पश्चिम, उत्तर, दक्षिण कहा जाता है। प्रत्येक दिशा के कोने में एक अन्य दिशा भी होती है जिसे भी एक दिशा मान लेने पर आठ दिशाऐं हो जाती हैं। ऊपर तथा नीचे दो दिशाऐं अन्य भी होती हैं जिसे मान लेने पर दिशाओं की संख्या दस हो जाती है। हम किसी न किसी दिशा में अवश्य रहते हैं। मनुष्य किसी भी स्थिति में रहे अर्थात् वह चलता रहे अथवा खडा रहे या लेटा और बैठा रहे वह किसी न किसी दिशा के सम्पर्क में अवश्य रहता है। वैसे जब हम गहनतापूर्वक विचार करते हैं तो यह स्पष्ट रूप से समझ में आ जाता है कि मनुष्य प्रत्येक दिशा के सम्पर्क में निश्चित रूप से रहता है। यह तथ्य उसी प्रकार से जैसे दस प्रकार के प्रकाश वाले यंत्र दिशाओं के साथ लगा दिए जाए तो प्रत्येक यंत्र का प्रकाश हमारी ओर रहेगा। इसी प्रकार दिशाओं की दृष्टि सामान्य रूप से मनुष्य पर रहती है। मनुष्य जिन कर्मो का सम्पादन करता है उन कर्मो का अंकन समग्र दिशाओं द्वारा किया जाता है और दिशाऐं परमात्मा की व्यवस्था में मनुष्य के कर्मो का अंकन करके उसकी प्रसूचना को परमात्मा को प्रेषित करती है।

11– जल : जल नामक तत्त्व मनुष्य के जीवन का आधार है। जल के अभाव में जीवन की कल्पना किया जा पाना असंभव है। पंच महाभूतों में जल भी एक महत्वपूर्ण अंग है। परमात्मा ने इस तथ्य को भी कर्म के अंकन में लगाया है। वस्तुतः हमारे शरीर के अधिकतर भाग में जल रूपी तत्त्व रहता है तथा हमारे चारों ओर भी जल रूपी तत्त्व की

स्थिति है। वह पृथ्वी के भीतर भी रहता है तथा वर्षा के समय आकाश की ओर से पृथ्वी पर आता है। इस प्रकार जल भी हमारे सभी कर्मो को अंकित करके उसकी प्रसूचना परमात्मा को प्रेषित करता है।

12– पृथ्वी : पंचमहाभूतों का एक विशिष्ट तत्त्व पृथ्वी है। हम सभी जिस पर रहते हैं विचरते हैं अनेक प्रकार के क्रियाकलाप करते हैं तथा इसे आधार समझते हैं वह पृथ्वी तत्त्व हमारे जीवन के लिए एक महत्वपूर्ण तत्त्व है। पृथ्वी नामक तत्त्व हमारे शरीर में भी रहता है क्योंकि वह पंच महाभूत का एक अंश है। मृत्यु के पश्चात् शरीर को पार्थिव कहा जाता है क्योंकि उसमें पृथ्वी का तत्त्व है। पृथ्वी का तत्त्व हमारे शरीर में होने के कारण हमारा शरीर अंततः पृथ्वी में ही समाहित हो जाता है, मिल जाता है। पृथ्वी से इसकी उत्पत्ति मानी जाती है और इसका अंत भी पृथ्वी में ही हो जाता है। मनुष्य समस्त प्रकार के कर्म पृथ्वी पर रहकर ही करता है। इस कारण परमात्मा ने पृथ्वी को मनुष्य के कर्मो के अंकन हेतु विशेष रूप से नियुक्त किया है। पृथ्वी हमारे समस्त कर्मो को अंकित करके उसकी प्रसूचना परमात्मा को प्रेषित करती है।

13– काल : काल के दो अर्थ हैं एक तो काल समय को कहते हैं और दूसरा काल का अर्थ मृत्यु के कारण से हैं। समय का प्रादुर्भाव सृष्टि के आदिकाल से ही है। काल सदैव रहता है। परमात्मा ने काल को मनुष्यों के कर्मो के अंकन हेतु लगाया है। मनुष्य जब जन्म लेता है और जब तक उसकी मृत्यु नहीं होती तब तक वह काल के अधीन ही रहता है। काल नामक तत्त्व के अधीन मनुष्य रहकर अनेक प्रकार की क्रियाऐं करता है। सामान्य रूप से यह कहा जाता है कि हमने अमुक समय में अमुक दिनांक को अमुक महीने में अमुक वर्ष में अमुक कार्य किया था। मनुष्य के इस कथन से काल के अस्तित्त्व का अनुमान होता है और यह निश्चित होता है कि काल नामक तत्त्व भी हमारे जीवन में बहुत महत्वपूर्ण तत्त्व है। इस प्रकार काल भी मनुष्य के प्रत्येक कर्मो का अंकन परमात्मा की व्यवस्था में करके उन कर्मो की सूचना परमात्मा को प्रेषित करता है।

14– धर्म : समस्त सूचनाऐं धर्म के अधीन एकत्रित होती हैं। धर्म नामक तत्त्व अथवा सत्ता मनुष्य के समस्त कर्मो की सूचनाऐं एकत्र करके उसको अपने अधीन संग्रहित रखता है और उसके कर्मो के आधार पर फल की व्यवस्था भी करता है। सृष्टि के आदिकाल से इस धर्म नामक सत्ता का नियंत्रण स्थापित है और धर्म ही परमात्मा की कर्म व्यवस्था का मूलभूत आधार है जो कर्मो के फल के विनिश्चय को बहुत पारदर्शी रूप में करता है। हमारे असंख्य जन्म हो चुके हैं और उन सभी जन्मों में धर्म नामक तत्त्व जीवित रहता है। उसने इस महत्वपूर्ण व्यवस्था को संभाल रखा है तथा निरन्तर ही अपने दायित्व का निर्वहन कर

रहा है। एक धर्म ही ऐसा तत्त्व है। ऐसी सत्ता है, जिसने इस समग्र जगत में अपनी व्यवस्था स्थापित कर रखी है। किस कर्म का क्या परिणाम होगा? और वह किस प्रकार से मनुष्य को प्राप्त होगा ? ऐसे किन संयोगों का उपार्जन किया जाए जिससे मनुष्य को उसके कर्मफल की प्राप्ति हो जाए। यह बड़ी वृहद् व्यवस्था परमात्मा के अधीन धर्म नामक तत्त्व ही करता है। वह पहले तो समस्त सत्ताओं के द्वारा अंकित की गई प्रसूचना को ग्रहण करता है उसके पश्चात् वह यह विनिश्चय करता है कि किस कर्म का क्या फल होना चाहिए? उस फल की उपलब्धि मनुष्य को किस प्रकार होगी? इसका भी विनिश्चय धर्म नामक तत्त्व करता है। जिस प्रकार एक न्यायाधीश अपने कर्म को जानता है वह विधि विज्ञान के समस्त समस्त सिद्धान्तों को जानने वाला होता है तथा उन्हीं सिद्धान्तों के आधार पर किसी के द्वारा किए गए अपराध के दंड का निवारण करता है। इसी प्रकार धर्म भी परमात्मा की कर्म व्यवस्था को सम्यक्रूपेण जानने वाला है। धर्म परमात्मा की कर्म व्यवस्था के आधार पर कर्मो को देखकर उसकी के अनुसार समस्त दंड का निर्धारण करता है। धर्म वस्तुतः पवित्र वेदों में उल्लिखित नियमों के आधार पर कर्मफल की व्यवस्था करने को बाध्य है। जैसे इस संसार में प्रत्येक राष्ट्र के पृथक्–पृथक् संविधान है। और उन संविधानों में लिखित तथ्यों के आधार पर ही प्रत्येक राष्ट्र की दंड व्यवस्था चलती है। अर्थात् दंड व्यवस्था के निर्धारण में संविधान ही आधार माना जाता है। वैसे ही परमात्मा की दंड व्यवस्था निर्धारण में वेदों को भी आधार माना जाता है। वेदों को संविधान के रूप में समझना चाहिए और धर्म को न्यायाधीश के रूप में मानना चाहिए। परमात्मा अपने उपयुक्त तथ्यों के माध्यम से जगत के समस्त मनुष्यों के कर्मो को अंकित कराता है यह अंकन ही आपके कर्मफल का आधार है। वास्तविक तत्त्व तो यह है कि हम जब विचार करते हैं तो पाते हैं कि समस्त व्यवस्था अत्यधिक संवेदनशील, पारदर्शी और सुचारू रूप से सृष्टि के आदि से अब तक चल रही है और आगे भी जब तक सृष्टि है तब तक वह चलती ही रहेगी। इसमें एक विशेष बात यह है कि यह सम्पूर्ण व्यवस्था अदृश्य है, अव्यक्त है तथा वह कर्मफल के रूप में हमें प्रतीत और अनुभव होती है। मनुष्य इस व्यवस्था के अधीन रहने को बाध्य है। हम सभी इस व्यवस्था के परिचालन के आधार पर ही चल रहे हैं और चलने को बाध्य हैं। यह सम्पूर्ण जगत परिवर्तित हो रहा है निरन्तर गति कर रहा है, वह मनुष्यों के कर्मो के स्वरूप में ही प्रकट है और उनका ही परिणाम है।

(6) पूर्व जन्म के संचित कर्मो से प्रारब्ध का निर्माण :–

पूर्वोक्त प्रकार से पूर्व जन्म के संचित कर्मो से जिन तथ्यों का निर्धारण अथवा उसका विनिश्चय होता है उसका वर्णन हो चुका है। उनके ही आधार पर मनुष्य के प्रारब्ध

का निर्माण होता है। मनुष्य ने पूर्व जन्मों में जो कर्म किये थे उससे मनुष्य के जन्म स्थान, माता, पिता, लिंग, परिवार, कुल, जाति, प्रकृति, स्वस्थता, रूग्णता आदि का विनिश्चय होता है। इस स्थल पर अभी हम शिशुकाल की ही बाते कर रहे हैं। इस जन्म के कर्मो के तथ्यों का वर्णन अभी नहीं हो रहा है। हम मात्र शिशु अवस्था की स्थिति के सम्बंध में बात कर रहे हैं इस जन्म के प्रारब्ध का वर्णन आगे प्रसंगानुकूल करेंगे। मनुष्य इस विषय में पूर्ण अज्ञानी है कि उसका जन्म किस स्थान पर अमुक माता पिता के द्वारा या स्त्री पुरूष के रूप में, अमुक कुल जाति में क्यों हो गया है ? परन्तु इसके विनिश्चय के पर्याप्त आधार हैं। बिना आधार के अतार्किक रूप से कोई व्यवस्था नहीं चलती है। सब कुछ आधारभूत तथ्य है। विशेष तथ्य यह है कि इस सम्बंध में हमारी कोई संज्ञानता नहीं है। हमारी संज्ञानता में क्या नहीं है? इस तथ्य को भी समझना आवश्यक है। अर्थात् मनुष्य क्या नहीं जानता है? और उसके ज्ञान की सीमा कहां तक है? यह निम्नांकित तथ्यों से स्पष्ट रूप से जाना जा पाना संभवहै।

(क) मनुष्य अपने पूर्व जन्मों को नहीं जानता है :–

आज हम मनुष्य के रूप में इस पृथ्वी लोक पर रह रहे हैं, प्रतीत हो रहे हैं। दिखाई पड़ रहे हैं। सभी लोग हमें मनुष्य के रूप में पहचानते हैं। अर्थात् हमारी जो आकृति है वह मनुष्य रूप में ही है। इस मनुष्य जन्म के पूर्व हम क्या थे ? इस तथ्य को हम नहीं जानते हैं। मनुष्य इस सम्बंध में पूर्णरूपेण अज्ञानी है। हमारे इस जन्म के पूर्व कितने जन्म हो चुके है? उन समस्त जन्मों के सम्बंध में मनुष्य की स्मृति विस्मृत कर दी गई है। अर्थात् हमारी याद को भुला दिया गया है। इसका अभिप्राय यह है कि हमारे स्मरण में जो तथ्य है वे हमारी बुद्धि में कदापि नहीं है। सृष्टि के आदिकाल से अर्थात् जब से यह सृष्टि हुई है तब से हमारा जन्म निरन्तर हो रहा है। हमने कितने जन्म अब तक ग्रहण किये हैं? इसका हमें ज्ञान नहीं है।

हम सतयुग में भी थे, त्रेत्रातयुग में भी थे, द्वापर अर्थात् महाभारत काल में भी थे और वर्तमान कलयुग में भी हैं। अर्थात् हमारी जीवात्मा जो वर्तमान में हमारे शरीर में है वह सतयुग में भी थी त्रेताकाल में भी थी और अब भी है। उसमें कोई परिवर्तन नहीं हुआ है। जीवात्मा वही है यह हजारों जन्मों का परिवर्तन हम नहीं जान पा रहे है। यह परमात्मा की विशिष्ट तथा विशेष व्यवस्था है। हमारे जन्म को परमात्मा ने प्रकट किया है और उस समय उस ज्ञान का हरण कर लिया। हम किन जन्मों में क्या थे ? यह तथ्य हमारी स्मृति से नष्ट कर दिया गया। इसलिए इस बारे में हमें वर्तमान में कोई ज्ञान नहीं है। इस प्रकार

यह तथ्य निश्चित है कि हम अपने पूर्व जन्मों को नहीं जानते हैं और पूर्व जन्मों के ज्ञान के बारे में पूर्णरूपेण अज्ञानी हैं।

(ख) मनुष्य को अपने पूर्व जन्मों के कर्मो का ज्ञान नहीं है :–

हम जब अपने पूर्व जन्मों को नहीं जानते हैं तो हमने पूर्व जन्मों में क्या क्या कर्म किये थे ? उनका भी हमें ज्ञान नहीं है। अर्थात् हम यह नहीं जानते हैं कि हमने किस जन्म में किन कर्मो का सम्पादन किया था। पूर्व जन्मों में हमने लाखों कर्म किये होंगे यह निश्चित है। कर्मो की एक लम्बी श्रृंखला है जो हमारे साथ है। इस लम्बी श्रृंखला को भी हम नहीं जानते हैं। जब हम अपने जन्मों को नहीं जानते हैं तो उसमें सम्पादित कर्मो को किस प्रकार जान सकते हैं? अर्थात् नहीं जान सकते हैं। यहां पर एक विशिष्ट तथ्य यह है कि हम अपने कर्मो को नहीं जानते हैं पर उन्हीं कर्मो के आधार पर हमारे प्रारब्ध का निर्माण हुआ है तो उसे कैसे जान सकते हैं ? अपने प्रारब्ध का अनुमान अपनी स्थिति के आधार पर लगाते हैं। यदि हम अच्छे स्थान में, अच्छे माता पिता के द्वारा, उच्च कुल में उत्पन्न हुए हैं तथा हमारी समस्त परिस्थितियां अनुकूल हैं और हम शारीरिक रूप से सुन्दर और स्वस्थ हैं, तो हम शुभ कर्मो का अनुमान लगाते हैं। अर्थात् हमने पूर्व जन्मों में शुभ कर्मो का सम्पादन किया होगा जिसके फलस्वरूप में हमें अनुकूल परिस्थितियां स्वतः ही प्राप्त हो गयी हैं।

उक्त तथ्य के प्रतिकूल हम यदि निम्न कुल में उत्पन्न हुए हैं। गरीब परिवार में उत्पन्न हुए हैं तथा प्रतिकूल परिस्थितियों में रहकर अस्वस्थ रहते हैं। अथवा कुरूप हैं तो हम अपने पूर्व जन्मों के कृत कर्मो को निकृष्ट मानते हैं और ऐसा अनुमान करते हैं कि हमने अपने पूर्व जन्मों में कुछ अच्छा नहीं किया है। इस कारण हमारे समक्ष ऐसी स्थितियां उपस्थित हो गयी हैं। यह सबका सब अनुमान पर आधारित है। इस सम्बंध में निश्चित रूप से कुछ भी कहा जा पाना संभव नहीं है। हमारे पूर्व जन्म के कर्म अच्छे होंगे तो हमारा प्रारब्ध भी अच्छा रहेगा और पूर्व जन्मों के कर्म खराब होंगे तो हमारा प्रारब्ध भी खराब होगा। निकृष्ट होगा। ऐसी हम अवधारणा कर लेते हैं। इस अवधारणा के आधार पर विनिश्चय भी करते हैं। यह सबका सब अनुमान ही है। जिस प्रकार बादल को देखकर हम वर्षा होने का अनुमान करते हैं कि वर्षा शीघ्र होगी या नहीं होगी, कितनी होगी? ऐसा विनिश्चय ठीक–ठीक रूप से नहीं हो सकता। यह सब अनुमान पर आधारित है। इसी प्रकार पूर्व जन्मों के कर्मो को हम सम्यक्रूप से तो नहीं जानते और उसका अनुमान लगाते हैं। यही मनुष्य की अज्ञानता है।

(ग) पूर्व जन्मों के कृतकर्मो का फल ही मानव शरीर :–

हमें जो यह मानव शरीर शिशु के रूप में प्राप्त हुआ था उसमें हमारे पूर्व जन्मों के कृतकर्मो के परिणाम ही आधार हैं। हमने पूर्व जन्मों में जो शुभ कर्म किये थे अर्थात् उचित और लोगों के हितार्थ कर्म किये थे उन सबका कुल परिणाम हमें मानव शरीर के रूप में प्राप्त हुआ है। हम शिशु के रूप में उत्पन्न हुए यह हमारे कर्मो का स्पष्ट स्वरूप है। परन्तु साथ ही परमात्मा की अतिशय कृपा भी है। हम जानते हैं कि इस संसार में अनेक प्रकार के जीव जन्तु हैं। पशु पक्षी हैं, त्रियक् योनियां अर्थात् कीड़े मकोड़े भी हैं। हो सकता है कि हमने उसमें भी विचरण किया हो। परमात्मा की अतिशय कृपा से हमें पुनः यह मनुष्य शरीर प्राप्त हुआ है। शास्त्रों में भी ऐसा उल्लेख आता है कि परमात्मा की कृपा के फलस्वरूप ही हमें मानव जन्म प्राप्त होता है। क्योंकि मानव जन्म में हमें उत्थान का, परमात्मा की भक्ति का अधिकार है। शेष किसी योनि में भी हम परमात्मा की भक्ति नहीं कर सकते हैं। मानव के अतिरिक्त समस्त योनियां मात्र भोग योनियां हैं और वहां पर विवेक की शून्यता है। मनुष्य में विवेक रहता है जिससे मनुष्य अपनी मुक्ति का प्रयास कर सकता है। मुक्ति का प्रयास मानव जीवन में ही हो सकता है। अन्य किसी में नहीं हो सकता है। इस कारण मानव जीवन को श्रेष्ठ कहा जाता है। यह मानव जीवन मात्र परमात्मा की कृपा से हमें प्राप्त होता है। हमें उसकी अतिशय कृपा से हस्तगत होता है। इसमें पूर्वकृत कर्म आधार रहते हैं।

(घ) प्रारब्ध का अर्थ :–

पूर्व जन्मों के कृत कर्म फल देते हैं और उससे हमारा मानव शरीर शिशु के रूप में हमें प्राप्त हो जाता है। यह सबका सब प्रारब्ध के रूप में है। हमें प्राप्त होता है। कर्म के परिणाम को प्रारब्ध कहते हैं। यह परिणाम जब प्रतीत होता है तो उसका हम स्पष्ट आभास करते हैं और कहते हैं कि यह होना था। यह प्रारब्ध था। हम किसी घटना के जब शिकार हो जाते हैं अथवा बीमार हो जाते हैं अथवा हमारा कोई सगा सम्बंधी किसी घटना का शिकार हो जाता है अथवा उसकी कुसमय मृत्यु हो जाती है तो हम यही कहते हैं कि यह हमारा प्रारब्ध था, जो कर्मफल देने के लिए प्रस्तुत हो गया है उसे ही प्रारब्ध का रूप मानते हैं। हमारे पूर्व जन्मों के कर्मफल देने को जब प्रस्तुत हुए तो हमें मानव शरीर प्राप्त होगा यह पूर्व जन्मों का फल था कि हमें मानव शरीर जन्म प्राप्त हुआ। कल कर्म आज का प्रारब्ध है। इसे कभी कभी यह कहते हैं कि अमुक घटना हमारे भाग्य में थी। भाग्य का आधार कर्म ही है। हमने जो कर्म किये हैं वे फल देने को प्रस्तुत हैं और वे हमें प्रारब्ध के रूप में प्रतीत हो रहे हैं। इस प्रारब्ध को भी सम्यक्रूपेण जाना जा पाना असंभव है।

अर्थात् हमारा भाग्य कब उदय होगा और हम कब दुर्भाग्य के शिकार हो जायेंगे इसको भी मनुष्य ठीक ठीक से नहीं जान सकता। इस कारण वह अज्ञानी है।

(7) पूर्व जन्मों के कर्मो के सम्बंध में कुछ विशिष्ट तथ्य :–

पूर्व जन्म के कर्मो के आधार पर हमें शिशु का जन्म प्राप्त हो जाता है। उससे जन्म स्थान, परिवार, माता–पिता, स्वस्थता, अस्वस्थता, समाज आदि आदि हमें प्राप्त हो जाते हैं परन्तु पूर्वजन्मों में किये गए कर्मो का फल अभी भी अवशेष रहता है। वह पूरी तरह से समाप्त नहीं होता। वह भी एक प्रकार का संचित कर्म है जो संकलित रहता है। परमात्मा की व्यवस्था के अनुकूल उसका भंडारण रहता है। हमें मानव जन्म प्राप्त हो गया उसमें कुछ संचित कर्म समाप्त हो जाते हैं परन्तु कुछ अभी फल देने की स्थिति में नहीं है। वे शान्त रहते हैं अर्थात् उनकी प्रसुप्त अवस्था रहती है। वे फल देने को कब तत्पर होंगे कब उन्मुख होंगे यह बड़ा ही अविज्ञेय तथ्य है। इस जन्म का कौन सा कर्म हमें फल देने को उन्मुख हो रहा है? यह जानना असंभव है। हम सब अनुमान के आधार पर ही इसका अनुमानित विनिश्चय अर्थात् निर्धारण करते रहते हैं। पूर्वजन्मों के कृत संचित कर्मो के सम्बंध में कुछ विशिष्ट तथ्य प्रस्तुत हैं, उनका अवलोकन कीजिए–

(क) संचित कर्मो की कितनी मात्रा अवशेष है यह नहीं जाना जा सकता :–

हम यह भी नहीं जान सकते अथवा हमें यह ज्ञात नहीं है कि हमारे पूर्व जन्मों के संचित कर्म किस मात्रा में अभी संचित हैं। हमारा जन्म तो हो जाता है। पूर्व जन्मों के कर्मो के संचय और उनकी मात्रा की जानकारी हमें नहीं रहती है। परन्तु संचित कर्म रहते अवश्य हैं। वे पूरे के पूरे अर्थात् सम्पूर्णता से विनिष्ट नहीं होते हैं। यह भी विशेष तथ्य है कि परमात्मा ने हमें इस तथ्य की जानकारी से वंचित रखा है। ऐसी कोई विधि अथवा उपाय स्पष्ट नहीं है कि हम पूर्व जन्मों के कर्मो की अवशेष मात्रा का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर सकें। किसी भी विधि से हम पूर्व जन्मों के पूर्वकृत कर्मो को उनकी संचित मात्रा को अथवा अवशेष संचित मात्रा को जान सकें। इस सम्बंध में निश्चित रूप से कुछ भी नहीं कहा जा सकता है, और विशेष तथ्य यह भी है कि उनका अनुमान भी हम नहीं लगा सकते हैं। इस प्रकार पूर्व जन्मों की संचित मात्रा का सही प्रकार से अर्थात् सम्यक्रूपेण विनिश्चय नहीं हो सकता है और किसी प्रकार भी उनकी मात्रा को हम अनुमानित नहीं कर सकते हैं। यह परमात्मा की विशिष्ट व्यवस्था है कि पूर्व जन्मों के पूर्वकृत कर्मो के परिणाम से मनुष्य अनभिज्ञ है।

(ख) पूर्वजन्मों के संचित कर्म कब फल देंगे?यह भी नहीं जाना जा सकता है:–

मनुष्य पूर्वजन्मों के संचित कर्मो के परिणाम को नहीं जान सकता तथा वे कब फलदायी होंगे अर्थात् कब फल देंगे? यह भी जानकारी मनुष्य को नहीं होती है। पूर्व जन्म के संचित कर्म कैसे प्रकट होंगे? और कब प्रकट होंगे यह भी परमात्मा की कर्म व्यवस्था के आधार पर ही तय होता है। पूर्व जन्मों के संचित कर्मो का परिणाम अथवा फल विभिन्न रूपों में जीवन में प्रकट हो जाता है वह कब प्रकट होगा और कैसे प्रकट होगा? इसे जाना नहीं जा सकता है। पूर्वजन्म के संचित कर्मो का प्रकटीकरण किन रूपों में होता है? इसका अनुमान मनुष्य लगा सकता है, पर जिन तथ्यों का विवरण प्रस्तुत किया जा रहा है वे जन्म के संचित कर्मो के कारण ही प्रकट होते हैं। जो परिणाम प्रकट होते है, उनका विवरण कुछ निम्न प्रकार है।

(एक) प्रतिकूलता के रूप में :–

जब हमारे जीवन में प्रतिकूलता अनायास आ जाती है जिसका हमें कोई स्पष्ट कारण प्रतीत नहीं होता है तो वह प्रतिकूलता पूर्व जन्मों के संचित कर्मो के कारण होती है। यदि प्रतिकूलता बिना कारण के अनायास ही बिना आधार के आ जाती है और उसका कोई कारण हमें स्पष्ट रूप से प्रतीत नहीं होता है तो वह पूर्व जन्मों के संचित कर्मो के फल के कारण हो सकती है। हमें प्रतिकूलता पर विचार करना चाहिए और उसके निवारण हेतु परमात्मा से प्रार्थना करनी चाहिए। जीवन के आरम्भ में जो प्रतिकूलताऐं रहती हैं अर्थात् बाल्यावस्था में जो प्रतिकूलताऐं रहती हैं, वे तो निश्चित रूप से पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर रहती हैं और जो प्रतिकूलताऐं जीवन के अवसान के समय अर्थात् प्रौढ़ा अथवा वृद्धावस्था में आ जाती है तो वे इस जन्म के कृतकर्मो के परिणाम के रूप में भी हो सकती हैं। यह सम्यक्रूपेण नहीं जाना सकता कि यह प्रतिकूलताऐं पूर्वजन्मों के कृत कर्मो के कारण आ गयी हैं अथवा इस जनम के कृतकर्मो के कारण हैं।

(दो) किसी गंभीर बीमारी के रूप में :–

पूर्वजन्मों के संचित कर्मो के कारण मनुष्य कभी–कभी गंभीर बीमारियों से ग्रस्त हो जाता है। आपने देखा होगा कि कोई बालक ऐसी बीमारी से ग्रसित हो जाता है जिसका इस जीवन से कोई सम्बंध प्रतीत नहीं होता है। एक बालक क्या ऐसा गंभीर अपराध करता है? जिससे गंभीर बीमारी अनायास प्रकट हो जाती है। उस गंभीर बीमारी को देखकर ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह पूर्व जन्मों के संचित कर्मो के कारण ही है। इसका अन्य कारण प्रतीत नही हो रहा है। प्रौढ़ावस्था और वृद्धावस्था में जो गंभीर बीमारियों प्रकट हो

जाती है, वह पूर्व जन्मों के कृतकर्मो के आधार पर ही हो सकती हैं और इस जन्म के कृत कर्मो के आधार पर भी हो सकती हैं। इस तथ्य को सम्यक्रूपेण तथा सही सही जाना जा पाना भी असंभव है कि यह गंभीर बीमारी हमारे पूर्व जन्मों के कृत कर्मो के आधार पर प्रकट हुई है, अथवा इस जन्म के कर्मो के आधार पर हमारे सम्मुख प्रकट हुई है। इस प्रकार इस सम्बंध में भी मनुष्य पूर्णरूपेण अज्ञानी है।

(तीन) असाध्य रोगों के रूप में :–

पूर्वजन्मों के संचित कर्मो के कारण मनुष्य कभी–कभी अनेक प्रकार की गंभीर बीमारियों से अनायास ही बिना कारण ग्रस्त हो जाता है। आपने बहुधा देखा होगा कि कोई छोटा बालक अनेक प्रकार के आसाध्य रोगों से ग्रस्त हो जाता है जिसका इस जीवन से कोई सम्बंध दूर–दूर तक प्रतीत नहीं होता है। एक बालक ऐसा क्या गंभीर अपराध कर सकता है जिसके परिणाम में उसके समक्ष असाध्य रोग अकारण और अनायास प्रकट हो जाते हैं। उस गंभीर और असाध्य रोग को देखकर ऐसा अनुमान लगाया जाता है और तार्किक रूप से ऐसा स्पष्ट प्रतीत होता है कि वह असाध्य रोग पूर्व जन्मों के संचित कर्मो के कारण ही प्रकट हो गया है। ऐसे असाध्य रोगों का एक बालक के शरीर में प्रकट हो जाना एक विडम्बना ही प्रतीत होता है। बहुत विचार करने पर भी उसका कोई समुचित कारण इस जन्म के परिपेक्ष्य में प्रतीत नहीं होता है। इस प्रकार पूर्व जन्मों के संचित कर्मो के कारण भी कोई गंभीर और असाध्य रोग कभी भी प्रकट हो सकता है। उसके प्रकट होने के समय को और प्रकार को निश्चितरूपेण जाना जा पाना असंभव है।

(चार) किसी गंभीर घटना के रूप में :–

पूर्वजन्मों के संचित कर्मो के कारण कोई गंभीर घटना भी हो सकती है। आपने देखा होगा कि अनायास ही अनेक प्रकार की घटनाऐं हो जाती हैं। यह घटनाऐं दैवीय आपदा के कारण वाहन आदि के क्षतिग्रस्त होने के कारण बहुधा होती रहती हैं। इससे अनेक लोग या तो मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं अथवा गंभीर रूप से घायल हो जाते हैं। दैवीय आपदाओं के रूप में जो घटनाएं होती हैं अथवा सड़क की दुर्घटना के रूप में जो घटनाऐं होती हैं अथवा अन्य किसी कारण से भी होती हैं वे अकारण अथवा अनायास नहीं होती हैं। वे हमारे कर्मो के परिणाम के स्वरूप में ही प्रकट होती हैं अर्थात् उनका संयोग हमारे कर्मो के परिणाम के रूप में हमें प्रतीत होता है। अनेक घटनाऐं तथा दैवीय आपदाऐं हमारे पूर्व जन्मों के संचित कर्मो के कारण भी हो सकती हैं। अथवा उनका सम्बंध इस जन्म के कर्मो से भी हो सकता है। यह निर्धारित करना की यह दैवीय आपदा इस जन्म के

कर्मो के परिणाम के स्वरूप में प्रकट हुई अथवा पूर्व जन्मों के परिणाम के रूप में प्रकट हुई है, असंभव कार्य है। अर्थात् इसका विनिश्चय किया जा पाना असंभव ही है कि जो घटना हमें प्रतीत हो रही है, उसका कारण पूर्व जन्म है, अथवा यह जन्म है। इसलिए कभी–कभी किसी गंभीर घटना के रूप में भी पूर्व जन्म के संचित कर्म प्रकट हो जाते हैं। इस सम्बंध में भी निश्चितरूपेण कुछ भी जाना जा पाना असंभव है।

(पांच) अकाल मृत्यु के रूप में :–

किसी भी आयु में विशेषकर बाल्यावस्था में जब कोई अकाल मृत्यु होती है वह विशेषकर पूर्व जन्मों के संचित कर्मो के परिणाम के कारण ही होती है। अन्य कारण भी हो सकते हैं। ऐसा अनुमान लगाया जाता है। प्रत्येक जीव परमात्मा की व्यवस्था में अपनी आयु को लेकर इस संसार में प्रकट होता है। उसकी जब अकाल मृत्यु होती है तो यह भी अनुमान लगाया जाता है कि वह इतनी ही आयु लेकर इस संसार में आया था। परन्तु अकाल मृत्यु अर्थात् असमय आने वाली मृत्यु के सम्बंध में यह निश्चित रूप से कहा जा सकता है कि वह हमारे पूर्वजन्म के कर्मो के परिणाम के रूप में हमारे समक्ष प्रकट हुई है अथवा हमने इस जन्म में कोई ऐसा कुकृत्य किया है जिसके कारण परमात्मा ने हमारी आयु समाप्त करने का निर्णय करके हमें इस पृथ्वीलोक से वापस बुला लिया है। इसलिए जो अकाल मृत्यु होती है वह यदि विशेषकर बाल्यावस्था में ही होती जाती है तो ऐसा समझना चाहिए और अनुमान लगाना चाहिए कि यह अकाल मृत्यु पूर्व जन्मों के संचित कर्मो के परिणाम के कारण ही प्रकट हुई है। इस सम्बंध में यह तथ्य और भी कहा जा सकता है कि उसमें परिवार के किसी सदस्य के संचित कर्म प्रकट हो गए हों। इसलिए अकाल मृत्यु के रूप में जो घटनाऐं प्रतीत होती हैं उनके कारण का सम्यक् अनुमान लगा पाना असंभव तथ्य है। हम इस सम्बंध में पूर्व जन्मों के कृत कर्मो तथा वर्तमान जन्म के कृतकर्मो को आधारभूत तथ्य मानने का प्रयास करते हैं और इस सम्बंध में अनुमान भी लगाते है।

(छः) संसार में अनेक अव्यवस्थाओं के रूप में :–

वर्तमन समय में आपने यह देखा होगा कि संसार में भूकम्प,भूचाल, तूफान, समुद्र की ओर से आने वाली आपदाऐ, आकाशीय बिजली का गिरना आदि आदि घटनाऐं भी बहुधा होती रहती हैं। इन घटनाओं से अनेक लोगों की मृत्यु भी हो जाती है और धन की भी हानि होती है। जो लोग इन आपदाओं के कारण मृत्यु को प्राप्त होते हैं उनका कारण में उनके कर्मो को ही देखा जाना चाहिए। दैवीय आपदाओं के प्रकट होने के अन्य कारण भी

हो सकते हैं, परन्तु जब मनुष्य प्राकृतिक व्यवस्था को अव्यस्थित करने का प्रयास करता है तब प्रकृति रोष के रूप में अपना प्रभाव प्रकट करती है और वह प्रभाव भूकम्प, भूचाल, समुद्री तूफान, ओलावृष्टि, अतिवृष्टि के रूप में प्रकट होता है प्रकृति भी यह चाहती है कि मनुष्य को जिन शास्त्रीय कर्तव्य कर्मो से बांधा गया है वे उनका अनुपालन करें तथा चूंकि प्रकृति परमात्मा की सहचरी है इस कारण वह यह चाहती है कि प्रत्येक मनुष्य परमात्मा का यथोचित रूप से भजन पूजन कीर्तन भी करे। जब मनुष्य अपने कर्तव्य कर्मो का उचित रूप से पालन नहीं करता है तथा संसार में विलासतापूर्ण जीवन जीने को उद्यत हो जाता है तब भी प्रकृति अपना क्रोध प्रकट करती है और वह क्रोध इन्हीं आपदाओं के रूप में प्रकट हो जाता है जो लोग इससे प्रभावित होते है उन्हें उनके संचित कर्म ही प्रभावित करते हैं।

(ग) पूर्व जन्मों के संचित कर्म क्या फल देंगे यह भी नहीं जाना जा सकता? :–

परमात्मा की यह विशिष्ट व्यवस्था है, जिसे कर्म की व्यवस्था के रूप में जाना जाना चाहिए। हमारे संचित कर्म क्या परिणाम देंगे? अर्थात् हमारे संचित कर्मो का क्या परिणाम होगा? इसको जाना जा पाना भी इतना सहज नहीं है। सामान्य रूप से इसे असंभव ही मानना चाहिए। शास्त्रों में जो कुछ उल्लेख आता है उसे ही इस सम्बंध में आधार बना लिया जाता है। सामान्य रूप से हमें यह समझना चाहिए कि हमने किसी का जिस प्रकार से अहित किया है वैसा ही अहित और परिणाम हमारे समक्ष भी प्रकट होता है। प्रकृति अपनी विशालतम व्यवस्था के अधीन इसे प्रकट कर देती है। यही तो परमात्मा की कर्म के फल के प्रकटीकरण की विशिष्टता है।

प्रकृति मनुष्य के प्रत्येक कर्म का प्रतिफल देती है। जैसे एक कृषक बीज बोता है तो प्रकृति ही उस बीज का कई गुना परिणाम देती है। इस परिणाम को परमात्मा की व्यवस्था के रूप में देखना चाहिए। इसी प्रकार पूर्व जन्मों के संचित कर्म क्या परिणाम देंगे? यह जाना जा पाना असंभव है, क्योंकि समस्त परिणाम परमात्मा की व्यवस्था के अधीन मनुष्य को स्वतः प्राप्त हो जाते हैं। संचित कर्मो के परिणाम देने की परमात्मा की व्यवस्था है। जैसी है, जो भी है उसे हमें मानना भी पड़ता है और उस व्यवस्था को हम मानने को बाध्य भी हैं। पूर्व जन्मों के संचित कर्मो के परिणाम की निश्चित व्यवस्था है जो कर्म की प्रकृति के आधार पर आधारित है। हम जिस प्रकार के कर्म करते हैं उसी प्रकार के परिणाम हमें साधारणतया प्राप्त हो जाते हैं। शुभकर्मो के कारण हमें शुभ परिणाम मिलते हैं और अशुभ कर्मो के अशुभ परिणाम हमें निश्चित प्राप्त होते हैं। वह अव्यक्त परमात्मा और प्रकृति इसकी ठीक–ठीक व्यवस्था करती है, परन्तु पूर्व जन्मों के संचित कर्म क्या

परिणाम देंगे? उसको जाना जा पाना मनुष्य के लिए असंभव है। इसका एक कारण है कि परमात्मा भी अव्यक्त है प्रकृति भी अव्यक्त और उसकी कर्मफल व्यवस्था तथा कर्मफल भी अव्यक्त रहता है। वह समय के साथ प्रकट होता है। परमात्मा भी कार्य के रूप में प्रकट होता है। प्रकृति भी अपना कार्य प्रकट कर चुकी है और कर्म फल भी प्रभाव के रूप में मनुष्य के समक्ष स्वतः ही प्रकट हो जाता है। इसलिए पूर्वजन्मों के संचित कर्म क्या परिणाम देंगे? यह भी जाना जा पाना असंभव है।

(घ) पूर्व जन्मों के संचित कर्मो के परिणाम को टाला जा सकता है :–

पूर्वजन्मों में हमने जो दुष्कर्म तथा असामाजिक शास्त्र विरूद्ध कृत्य किये हैं वे अवश्य परिणाम होते हैं। उनके परिणाम से हमारा बचाव नहीं हो सकता है, परन्तु साधक उसे टाल सकता है। यह तथ्य साधना के उच्च स्तर पर जाकर हमें प्रतीत होने लगता है। पूर्वजन्मों के संचित कर्मो के परिणाम को कैसे टाला जा सकता है? यह एक विशिष्ट प्रक्रिया है। पहले तो अनायास जब प्रतिकूल परिस्थितियां प्रकट होने लगती है तो साधक पूर्व जन्मों के परिणामों के प्रकट होने का आभास कर लेता है। पूर्वकृत संचित कर्म अपने परिणाम देने को जब उन्मुख होते हैं तो हमारे समक्ष अनेक प्रकार की प्रतिकूलताऐं स्वतः ही प्रकट हो जाती हैं। ऐसी परिस्थितियां आने पर अर्थात् प्रतिकूलता का आभास होने पर साधक को उन परिणामों को टालने की इच्छा से निम्न कर्मो को करना चाहिए।

(एक) परमात्मा के अत्यधिक स्मरण का प्रयास :–

परमात्मा हमारे कर्मफलों का प्रदाता है और उसकी व्यवस्था के आधार पर ही हमें कर्मफल प्राप्त होता है। इस कारण वह यदि चाहें तो हमारे कर्मफल को टाल सकता है। साधक जब संसार और संसार के विषयों का स्मरण छोड़ने का प्रयास करता है तो परमात्मा के स्मरण की उन्मुखता उसमें हो जाती है। परमात्मा के स्मरण से उसे अतिशय शान्ति प्राप्त होती है। साधारणतया मनुष्य जब तक संसार का स्मरण करता है तब तब उसमें अशान्ति का रहना स्वाभाविक है। जगत का, संसार के क्रिया कलापों का स्मरण त्यागकर जब साधक परमात्मा का स्मरण करने लगता है तो धीरे–धीरे उसका ध्यान संसार से हटकर परमात्मा की ओर जाता है। यह स्थिति दृढ़ होने पर परमात्मा का ध्यान भी हमारी ओर बढ़ता है। आकृष्ट होता है। यह स्थिति एक भक्त की होती है। जब परमात्मा अपने भक्त पर कुछ गंभीर संकट और अनिष्ट देखता है तो वह उसके प्रभाव को कम कर देता है अथवा टाल देता है अथवा अपने प्रभाव से उसको क्षमा कर देता है। इस प्रकार परमात्मा के अत्यधिक स्मरण से भी पूर्व जन्मों के फलों से उत्पन्न होने वाले अनिष्टों को हम टाल सकते हैं।

(दो) परमात्मा से अनुनय विनय करने पर :– प्रतिकूल परिस्थितियों के आने पर जब मनुष्य परमात्मा से अनिष्टों के समापन और उन्हें टालने हेतु पुनः पुनः प्रार्थना करता है तथा अनुनय विनय करता है कि हमारे पूर्व जन्म के संचित कर्मो को टाल दें, तो परमात्मा अपनी व्यवस्था के अधीन हमें अनेक प्रकार के संचित कर्मो के दुष्परिणाम से बचा सकता है। यह तथ्य उसी प्रकार है, जिस प्रकार हम कोई अपराध करते हैं तो कोई न्यायाधीश हमें उसके दंड को देना चाहता है अर्थात् हमें उस अपराध के लिए दंडित करना चाहता है। यदि हम न्यायाधीश से यह प्रार्थना करते हैं अथवा अनुनय विनय करते हैं तो वह कुछ समय के लिए दंड को टाल सकता है अथवा उसे कम कर सकता है या अपनी दया के आधार पर हमें दंड से उन्मोचित कर सकता है। इसी प्रकार हम प्रतिकूलता देखकर जब परमात्मा से अनिष्ट की आशंका के समापन के लिए अनुनय विनय करते हैं तो वह हमारी प्रतिकूलता को समाप्त करके हमें अभयदान दे सकता है अथवा उन प्रतिकूलताओं को टाल सकता है। ऐसी स्थिति में हमें हमारे शुभ कर्मो का परिणाम प्राप्त होने लगता है। इस प्रकार परमात्मा से विशेष प्रार्थना, अनुनय–विनय करने पर वह हमारे पूर्वजन्मों के संचित कर्मो के दुष्परिणाम को टाल सकता है।

(तीन) देवी देवताओं की उपासना करने से :–

शास्त्रों में देवी देवताओं की उपासना, यजन पूजन के पर्याप्त साधनों का उल्लेख हमें प्राप्त होता है। आदिकाल से ही अर्थात् सृष्टि के समय से ही देवी देवताओं की उपासना की परम्परा और व्यवस्था रही है। परमात्मा ने सृष्टि रचना के साथ ही देवी देवताओं की रचना भी की तथा उन्हें अधिकार देकर ब्रह्मांड की व्यवस्था का समग्र दायित्व सौंपा। साथ ही यह निर्देश भी दिया कि जो मनुष्य आपकी उपासना करें उन्हें आप इच्छित वस्तुएं प्रदान करें। देवी देवताओं के पास मनुष्यों के हित और कल्याण के पर्याप्त अधिकार हैं। जब हम अनिष्ट की आशंका अथवा प्रतिकूल परिस्थितियों के उत्पन्न होने पर देवी देवताओं की शरण लेकर उनकी विधिवत उपासना करते हैं तो वे हमें अपने अधिकार से कुछ सुख परिणाम प्रदान कर देते हैं। यह शुभ परिणाम हमारे पूर्व जन्मों के परिणाम को टालते हैं। वस्तुतः यह एक विशिष्ट स्थिति है। सामान्य स्थिति नहीं है। देवी देवता अपने अधिकारों का उपयोग करके हमें अनेक प्रकार के अनिष्ट से बचा सकते हैं तथा हमारे दुष्कर्मो के परिणाम को रोक सकते हैं।

(चार) शुभ कर्मो के क्रियान्वयन से :–

मनुष्य के लिए तीन कर्तव्य कर्म माने जाते हैं जिन्हें यज्ञ, दान और तप कर्म कहा जाता है। दान कर्म में असहायों की सेवा, दीन दुखियों की सहायता, निर्बल और निर्धन वर्ग

के लोगों के भोजन, आवास, वस्त्र की व्यवस्था आदि आदि कर्म आते हैं। सकाम भाव से अथवा क्लेशपूर्वक इन कर्मो को करने का उचित परिणाम हमें प्राप्त नहीं होता है। परन्तु मनुष्य जब निष्काम भाव से असहायों की सेवा, दीन दुखियों, तथा निर्बल वर्ग के लोगों की सहायता करता है तो उसके परिणाम के रूप में शुभफल की प्राप्ति हो जाती है। शुभ फलों की प्राप्ति होने पर अशुभ फलों का कुछ समय के लिए पतन हो जाता है। शुभकर्म करने से और अशुभकर्म के परित्याग से हमें अनेक प्रकार के अनिष्ट फलों के संयोग से मुक्ति प्राप्त हो जाती है। ऐसी स्थिति में हमारी प्रतिकूल परिस्थितियां स्वतः ही परिवर्तित हो जाती हैं। प्रतिकूल परिस्थितियों के समापन से हमे सुख प्राप्त होता है। इस प्रकार शुभ कर्मो के निष्काम भाव से सम्पादन से हमे पूर्व जन्मों के अनिष्ट फलों की प्राप्ति नहीं होती है और उनके परिणाम को हम टाल सकते हैं।

(ङ) पूर्व जन्मों को संचित कर्मो को भस्म किया जा सकता है :–

पूर्व जन्म के संचित कर्म स्वतः ही परिणाम प्रदान करते हैं, प्रकट करते हैं। अधिकांश संचित कर्म प्रसुप्त अवस्था में रहते हैं और समय आने पर वे प्रसुप्त अवस्था का परित्याग करके सक्रिय अवस्था में आ जाते हैं तथा परिणाम देने को उद्वत हो जाते हैं। जैसे एक बीज की प्रसुप्त अवस्था रहती है और जब बीज को उचित वातावरण, तापमान तथा जल का संयोग प्राप्त हो जाता है तो वह अंकुरित हो जाता है। इस अंकुरण में स्थितियां ही आधारभूत तथ्य हैं। इसी प्रकार पूर्व जन्मों के संचित कर्म भी समयानुकूल प्रस्फुटित हो जाते हैं, अंकुरित हो जाते हैं। इस स्थल पर इस तथ्य के सम्बंध में विचार किया जा रहा है, क्या इन संचित कर्मो को भस्म किया जा पाना संभव है? अथवा नहीं है। यह अत्यंत गहन और विचारणीय प्रश्न है। जिसमें हमें शास्त्रों में उल्लिखित तथ्यों को स्वीकार करना पड़ता है। चूंकि यह विषय अव्यक्त है, अप्रत्यक्ष है, अप्रकट है, इस कारण उस विषय में शास्त्रों के उल्लेख का आश्रय लेना पड़ता है, पर हम अपनी साधना से भी इसको परख सकते हैं।

साधना की प्रारम्भिक स्थिति में जब साधक साधना आरम्भ करता है तो उसकी क्रियाओं में एक पृथक् प्रकार की हलचल होती है। चूंकि साधक के परमात्मा की ओर उन्मुख होने पर उसके समक्ष अनायास ही प्रतिकूलताऐं बढ़ती हैं। साधक के धैर्य का परीक्षण इसी से होता है। साधक की प्रतिकूलताऐं ही साधना पथ में विशेष बाधक हैं। हम जब प्रतिकूलताओं में नहीं होते हैं अर्थात् संसार में सुख का आभास करते हैं तो हम संसारिक भोगों की ओर स्वतः ही सहज भाव से उन्मुख होते हैं। अनुकूलता का अधिकांश परिणाम सांसारिकता में प्रवेश करने से होता है। अनुकूल परिस्थितियों में मनुष्य सांसारिक

भोगों को खोजता रहता है। यह उसकी सहज प्रवृत्ति है। यह प्रवृत्ति रजोगुण के कारण होती है। अच्छा भोजन करने का प्रयास करना, अच्छे रहन सहन में रहने की इच्छा करना भोग वस्तुओं का संग्रह करना, आमोद, प्रमोद में समय बिताना, दुर्व्यसनों में समय काटना अर्थात् समय को विनिष्ट करना, अनुकूलताओं में ऐसे कार्य बहुलता से स्वतः ही होने लगते हैं। इसमें हमें कोई प्रयास नहीं करना पड़ता।

साधना की आरिम्भक स्थिति में प्रतिकूलताओं के बढ़ने का एक कारण है कि संचित कर्म समाप्त होने की ओर उन्मुख हो जाते हैं। जैसे यज्ञों के आवाहन पर देवता प्रकट हो जाते हैं वैसे ही साधना जैसे जैसे बढती है वैसे वैसे प्रतिकूलताऐं भी बढती हैं। इसका एक कारण है कि हम परमात्मा से सम्पर्क जब जोड़ते हैं तो वह हमारे पापों का समापन करने का प्रयास करता है और उसके परिणामों को प्रकट करता है। इसलिए प्रतिकूलताऐं बढ़ती जाती हैं। प्रतिकूलताओं को उदासीनत् भाव से देखकर जब साधना की ओर साधक बढ़ता है तो वह उत्कृष्ट साधक की कोटि में आ जाता है। ऐसी स्थिति में अनुकूलताऐं और प्रतिकूलताऐं अर्थात् सुख और दुख एक समान प्रतीत होते हैं। जब अनुकूलताऐं और प्रतिकूलताऐं एक जैसी प्रतीत हों अर्थात् सुख और दुख में बिना विचलित हुए रहा जाए तो इसे उत्कृष्ट साधना ही समझना चाहिए। इसी के आगे बढ़ने पर हमें सिद्धि प्राप्त होती है। मनुष्य के पूर्व संचित कर्म स्वतः ही विनिष्ट हो जाते हैं। यह स्थिति तब आती है जब मनुष्य को अपने स्वरूप में स्थिति रहती है। यह स्थिति सिद्धि के पश्चात् ही प्राप्त होती है।

सिद्ध होना तथा सिद्धि से समस्त पूर्व संचित कर्मो को भस्म करना कोई सहज कार्य नहीं है। तत्त्वदर्शी पुरूष ही ऐसी स्थिति को प्राप्त होता हैं इस कारण हमें यह संशय मन से निकाल देना चाहिए कि बिना सिद्ध हुए अर्थात् सिद्धि की स्थिति प्राप्त हुए हम पूर्व संचित कर्मो का समापन कर सकते हैं। सिद्ध मनुष्य का पूर्व संचित कर्मो के भस्मीकरण की प्रक्रिया का आभास हो जाता है। वह यह अनुभव करता है कि हमारे समग्र संचित कर्म ज्ञानरूपी अग्नि में भस्म हो चुके हैं। यहां पर एक तथ्य और स्पष्ट समझ लें कि पूर्व संचित कर्मो के समापन के अभाव में मुक्ति कदापि प्राप्त नहीं होती है। मुक्ति की परिभाषा में भी यह कहा जाता है कि पूर्व संचित कर्मो का जब साधना से विनाश किया जाता है तब उस स्थिति को मुक्ति कहते हैं। मुक्ति या मोक्ष होने पर पुनः जन्म नहीं होता। इस कारण पूर्व जन्मों के संचित कर्मो को उत्कृष्ट साधना से सिद्ध होने पर भस्म किया जाना संभव है। परन्तु यह स्थिति इतनी सहज नहीं है। अत्यंत दुर्लभ और दुष्तर है। यह सामान्य रूप से नहीं आती है

(8) पूर्व जन्म के सम्बंध में एक विशिष्ट तथ्य :–

मनुष्य जीवन का एक मात्र उद्देश्य परमात्मा की प्राप्ति है। परमात्मा की प्राप्ति को ही सामान्य आध्यात्मिक भाषा में मोक्ष प्राप्त करना कहा जाता है। हजारों मनुष्यों में से एक मनुष्य ही मोक्ष अर्थात् मुक्ति प्राप्ति हेतु प्रयास करता है। प्रयत्नशील होता है और उन प्रयास करने वालों से एकाध को ही परमात्मा के दर्शन का संयोग मिलता है। यह परमात्मा के साक्षात्कार की दुर्लभता है। यह पथ सहज नहीं है। प्रयत्न तो बहुत करते हैं परन्तु सिद्धि एकाध साधकों को प्राप्त हो पाती है। अत्यधिक प्रयास करने पर साधक की उत्कृष्ट स्थिति हो जाती है और यदि वह परमात्मा की प्राप्ति नहीं कर पाता है और परमात्मा की व्यवस्था के अधीन साधना के मध्य उसकी आयु समाप्त हो जाती है तो वह साधना के परिणाम स्वरूप उच्च लोकों में जाकर निवास करता है और वहां के दिव्य भोगों कों भोगता है। पुण्य कर्मो के परिणाम से वह उच्च लोकों को जाता है और वहां दीर्घ काल तक रहकर पुण्यों के क्षीण होने पर अर्थात् कम पड़ने पर उसका पुनर्जन्म इस पृथ्वी लोक पर होता है। पुण्यशील साधकों का पाप योनि में कभी जन्म नहीं होता है। यह परमात्मा की विशेष व्यवस्था है। उस साधक के पूर्व जन्म के संचित कर्म अति अल्प हो सकते हैं। पर वे प्रबल नहीं होते हैं। ऐसी स्थिति में वह पुनः योग साधना की ओर आकृष्ट हो जाता है। पूर्व जन्मों में जो साधना करता है उसके परिणामस्वरूप ही उसका उस योगसाधना में पुनः आकर्षण अनायास हो जाता है और पुनः योग साधना में लगकर सिद्धि प्राप्त कर लेता है।

यह सब साधना का विषय अदृश्य है। अव्यक्त है, जो पुनर्जन्म तथा उसके परिणाम से सम्बंधित है। मनुष्य इस प्रकार के विषय को जान नहीं सकता है। इस कारण इस विवरण के लिए अर्थात् इसकी जानकारी लिए शास्त्रों में उल्लिखित तथ्यों पर हमें आधारित रहना पड़ता है। अर्थात् शास्त्रों में उल्लिखित विवरण को मानना पड़ता है हमें जो कुछ विवरण शास्त्रों से प्राप्त होता है उस विषय की अनुभूति भी नहीं की जा सकती है क्योंकि वह एक जन्म का विषय नहीं है। इस कारण तार्किक बुद्धि वहां पर कार्य नहीं करती है। पूर्व जन्मों के विषय में जो तथ्य हमें शास्त्रों से प्राप्त होते हैं उन्हें विचारपूर्वक हम समझ सकते हैं कि ऐसा वर्णन है तो यह सही ही होगा।

जो साधक साधना करता है उसकी उत्कृष्टता में वह पुण्य के संचय का परिणाम तो अवश्य प्राप्त करेगा। पुण्यों के लाभ से उसे अनुकूलताऐं अवश्य प्राप्त होंगी। इस प्रकार हमें दुष्कर्मो, कुकृत्यों के परिणाम अवश्य प्राप्त होते हैं उसी प्रकार हम शुभ कर्मो के परिणाम से पुण्य लाभ तथा अनुकूलताऐं अवश्य प्राप्त करते हैं यह निश्चित नियम और सिद्धान्त है। सिद्धि के न प्राप्त होने पर हम उच्च लोकों के भोगों का सुख अवश्य प्राप्त कर लेते है।

यहांयह तथ्य तर्क संगत प्रतीत होता है। इस आधार पर जो तथ्य उपर्युक्त प्रकार से वर्णित है वह सही प्रतीत होता है। ऐसे साधक को आध्यात्मिक भाषा में योगभ्रष्ट कहते है। योगभ्रष्ट निश्चित ही श्रीमान योगियों के घर में जन्म ग्रहण करते हैं इस प्रकार जन्म इस जगत में अत्यंत दुर्लभ माना जाता है अर्थात शीघ्रता से प्राप्त नहीं होता है।

(9) पूर्व जन्म के संचित कर्मो का बाल्यावस्था पर प्रभाव :–

पूर्व जन्म के संचित कर्मो का बाल्यावस्था पर पर्याप्त प्रभाव रहता है। पूर्व जन्मों के संचित कर्मो के आधार पर बालक के अनुकूल प्रतिकूल सम विषम और मध्यम अनेक प्रकार की परिस्थितियां प्राप्त होती हैं। आपने देखा होगा किसी बालक के माता पिता, केवल माता, केवल पिता बचपन में ही समाप्त हो जाते हैं। अर्थात् उनके सिर से मातृत्व और पितृत्व का साया उठ जाता है। यह सब बालक के पूर्व जन्मों के संचित कर्मो के प्रभाव के कारण ही होता है। एक बालक के सुचारू भोजन, शिक्षा व्यवस्था और उसके विकास हेतु उचित परिस्थितियां प्राप्त होनी चाहिए परन्तु वे कभी–कभी प्राप्त नहीं होती हैं। किसी को वांछित परिस्थतियों से अधिक प्राप्त होता है। वे भोगों में ही, साधनों की बहुलता में ही अपना बचपन काटते हैं। किसी के माता पिता क्रूर स्वभाव के होते हैं। अर्थात् अति क्रोधी होते हैं और दूसरी ओर किसी के माता पिता अति प्रेमी होते हैं। वह सरल स्वभाव से बालकों को पालते हैं। यह जो भी प्रतिकूल और अनुकूल परिस्थतियां बालक के समक्ष आती हैं वह पूर्व जन्मों के संचित कर्मो के परिणाम के कारण आती है।

बाल्यावस्था से जब तक मनुष्य को सामाजिक मूल्यों की चेतना, जागृति, उचित अनुचित का ज्ञान नहीं होता है तब तक मनुष्य परमात्मा की कर्म व्यवस्था में उसके क्रियमाण कर्मो का परिणाम शून्य रहता है। अर्थात् वह जो कुछ भी करता है उसे उसके परिणाम प्राप्त नहीं होते हैं। एक बालक साधारणतया अपनी भूख और प्यास के निवृत्ति हेतु भोजन चाहता है। खेल एवं मनोरंजन हेतु साधन चाहता है। वह जो चाहता है उसमें ही अनुकूलता का आभास करता है। मांगे जाने पर, इच्छा करने पर जो उसे नहीं प्राप्त होता है वह ऐसी स्थिति में दुःखी हो जाता है। उसको वास्तविक तथ्यों पर सुख दुःख का आभास अथवा प्रतीति नहीं होती है। वह अपनी आकांक्षा की वस्तुओं की प्राप्ति पर सुख का आभास करता है और वांछित वस्तुओं के न मिलने पर दुःखी हो जाता है। क्योंकि वह अज्ञानी है और उसे भले बुरे का ज्ञान नहीं होता है। इस कारण उसके द्वारा किये गए कर्मो का कोई परिणाम भी नहीं होता है। बाल्यावस्था की समस्त क्रियाऐं परिणाम विहीन रहती हैं अर्थात् उसके क्रियमाण कर्म संचित कर्म नहीं हो पाते हैं। यह परमात्मा की कर्म व्यवस्था का ही एक अंग है जो विशिष्ट है। वस्तुतः प्रत्येक बालक के माता पिता को

बालक को शास्त्रों का ज्ञान कराना चाहिए तथा उसे क्या करना है? और क्या नहीं करना है? इस तथ्य का सहज भाव से बोध कराना चाहिए। जब बालक अपने कर्तव्य और कर्तव्य कर्मो को जान लेता है तो वह कर्तव्य कर्मो के सम्पादन का प्रयास करता है और अकर्तव्य कर्मो को छोड़ने हेतु प्रयत्न करता है।

(10) मनुष्य के द्वारा किये गए कर्मो के प्रकार :–

बाल्यावस्था के पश्चात् जब मनुष्य के अन्दर सांसारिक मूल्यों, क्रियाओं, विषयों के प्रति संज्ञानता और चैतन्यता आ जाती है तो वह कर्म की अच्छाई और बुराई को समझता है। ऐसी स्थिति में उस पर परमात्मा की कर्म व्यवस्था लागू हो जाती है और कर्म का संचय भी आरम्भ हो जाता है अर्थात् क्रियमाण कर्म संचित में परिवर्तित होने लगता है। मनुष्य द्वारा किए गए कर्मो का कार्यान्वयन प्रमुख रूप से निम्न भावों के आधार पर होता है। अर्थात् मनुष्य जो भी करता है उसमें निम्न तथ्य मूलभूत कारण होते हैं। इन कारणों का हमें ज्ञान होना अत्यावश्यक है। इस कारण इस स्थल पर उनका उल्लेख किया जा रहा है।

(क) पूर्ण अज्ञानता से :–

कुछ मनुष्य कर्मो को पूर्णरूपेण अज्ञानता से सम्पादित करते हैं। उन्हें जो कर्म प्रतीत होते हैं, जो कर्म अच्छे लगते हैं उन्हें वह करने लगता है। ऐसे पुरूषों को बाल्यावस्था में अध्ययन नहीं कराया जाता है। उनमें ज्ञान के अभाव के कारण अज्ञानतापूर्ण कर्मो का सम्पादन होता है। प्रातः जब ऐसे मनुष्य सोकर जागते हैं तो अपना कर्म करने लगते हैं। उनमें उचित और अनुचित का कोई भाव नहीं रहता है। अध्ययन न होने के कारण उनके द्वारा जो भी कर्म किये जाते हैं वे विचारपूर्वक नहीं होते हैं, क्योंकि उनमें विचार करने की क्षमता ही नहीं होती है। ऐसे मनुष्यों के अधिकांश कर्म पूर्ण अज्ञानता से पशु पक्षियों की तरह विवेकहीन ही होते हैं। अपना पेट भरना, अपने परिवार का पेट भरना और किसी भी प्रकार से धन सम्पत्ति को एकत्र करना। ऐसे मनुष्यों की विशेषता है। ऐसे अज्ञानी मनुष्यों का अन्य किसी से कुछ भी मतलब नहीं होता है। इनमें बाल्यावस्था में अज्ञान का भाव रहता है।

(ख) उचित अनुचित का विवेक न होने से :–

मनुष्य में अज्ञानता के कारण ही उचित और अनुचित को निर्धारित करने की योग्यता नहीं रहती है। इसे ही सामान्य भाषा में विवेक का न होना कहा जाता है। उचित

अनुचित का विवेक न होने से भी उचित को अनुचित मानकर अनुचित को उचित मानकर कर्म किया जाता है। मनुष्य का यह प्रथम कर्तव्य है कि वह अनुचित तथा उचित कर्म का ज्ञान निश्चितरूपेण प्राप्त करे। परन्तु अधिकांश मनुष्य उचित और अनुचित के ज्ञान से परिचित नहीं होते हैं। इस कारण वे मनमाना आचरण करते हैं। जीवन में उचित अनुचित कर्म का ज्ञान परम आवश्यक है। मनुष्य को कर्म, अकर्म, विकर्म का ज्ञान होना चाहिए। इन तीनों प्रकार के कर्मो के ज्ञान से मनुष्य सही सही कर्मो के आचरण का प्रयास करता है और ज्ञान न होने पर उचित को अनुचित अथवा उचित मानकर कर्म करता है। ऐसे पुरूषों की संख्या भी जगत में पर्यात है जो उचित, अनुचित कार्य का विवेक नहीं रखते हैं।

(ग) कर्म के परिणाम का विवेक न होने से :–

अधिकांश प्रकरणों में अर्थात् कर्मो में मनुष्य को कर्म के परिणाम का ज्ञान नही होता है। कर्म के परिणाम का ज्ञान न होने का अर्थ यह होता है कि वह नहीं जानता है कि वह जो कर्म कर रहा है वह भयावह है और उसका उचित परिणाम नहीं होगा, जो परिणाम होगा वह अत्यंत दुखदायी होगा। जैसे मनुष्य यह जानता है कि नदी में कूदने पर, किसी गड्ढे में कूदने पर, कुएं में कूदने पर अथवा गतिशील वाहन के समक्ष आ जाने पर मृत्यु हो सकती है। वह ऐसे कर्मो के परिणाम को जानता है इस कारण वह अपनी मृत्यु के भय से उन कर्मो को परित्याग कर देता है,उनसे बचा रहता है। मनुष्य को यदि उसके कृत कर्मो के परिणाम का ज्ञान हो जावे तो भी वह दुष्कर्मो का आचरण छोड़कर सत्य कर्मो का आचरण करेगा तथा उन्हें करने का प्रयास करेगा। इस कारण कर्म के परिणाम का विवेक न होने के कारण भी मनुष्य मन चाहे कर्म करता है।

(घ) उचित, अनुचित तथा कर्म के परिणाम का विवेक होने से :–

जब मनुष्य कर्म के निष्पादन में कर्म के उचित अनुचित परिणाम को जानता है तथा उचित अनुचित कर्म के अन्तर को जानता है तो वह संज्ञानतापूर्वक कर्म करने लगता है। उसके द्वारा जो भी कर्म सम्पादित किये जाते हैं वह संज्ञान दशा में होते हैं। जैसे यदि कोई व्यक्ति यह जानता है कि चोरी करना सही नहीं है और चोरी करने से हम दंडित किये जायेंगे तो यह स्थिति पूर्ण संज्ञानता की स्थिति है। जिसमें मनुष्य कर्म करने के अन्तर को जानता है तथा उसके परिणाम से भी परिचित होता है। यह अवस्था आने पर उसके द्वारा किये गए कर्मो का संचय होने लगता है। इस स्थिति में वह यह भी जानता है कि उसे ईश्वरीय उपासना करनी चाहिए इससे हमें पुण्य लाभ होगा अर्थात् वह सुकर्म के परिणाम को भी जानता ओर उसके अन्तर को भी जानता है। यहां पर यह प्रश्न उठता है

कि वह कर्म के परिणाम को जानकर उसके अन्तर को जानकर भी दुष्कर्म का आचरण क्यों करता है ? उसके कारण क्या है ? शास्त्रों में कामना, क्रोध तथा लोभ को इन दुष्कर्मो के क्रियान्वयन का कारण कहा गया है। मुनष्य जो भी दुष्कर्म करता है उसकी भी तीन स्थितियां होती हैं।

(एक) जानबूझ कर दुष्कर्मो का आचरण :–

मनुष्य कामना, क्रोध एवं लोभ के कारण ही दुष्कर्मो का आचरण करता है। कई विद्वान लोभ को कामना में ही संलिप्त कर लेते हैं तथा लोभ को भी कामना का एक प्रकार मानते हैं। वस्तुतः लोभ भी एक प्रकार की कामना ही है। इसकारण दुष्कर्मो का आचरण विशेषकर अनेक प्रकार की असंख्य असंयमित इच्छाओं के रहते ही होते हैं। असंख्य इच्छाओं की मनुष्य जब पूर्ति करना चाहता है तो उसमें बाधा आ जाती है। इस बाधा के फलस्वरूप क्रोध की उत्पत्ति होती है। तो क्रोधवश भी अनेक प्रकार के हिंसारूपी कर्म हो जाते हैं। मनुष्य अत्यधिक दुष्कर्म जान बूझकर ही करता है। उसमें दुष्कर्मो के सम्पादन के आधारभूत कारण हैं। वे असंख्य कभी न अतृप्त होने वाली आकांक्षाऐं हैं। इस आधारभूत कारण से मनुष्य नाना प्रकार के दुष्कर्मो का आचरण करता है। आज के समाज में नाना प्रकार की दुष्कर्मो की बहुलता प्रतीत हो रही है। यह मात्र कामना की पूर्ति हेतु ही हो रही है। इन दुष्कर्मो के क्रियान्वयन का स्पष्ट अन्य कारण प्रतीत नहीं होता है। इस कारण जो मनुष्य दुष्कर्मो का आचरण छोड़ना चाह रहा है वह तत्काल असंख्य कामनाओं का त्याग करके केवल जीवन निर्वाह हेतु ही कामनाएं करें।

(दो) किसी की प्रेरणा से :–

दुष्कर्मो का सम्पादन किसी की प्रेरणा से भी होता है, परन्तु उसमें मूलभूत कारण तो कामना ही है। जैसे कोई व्यक्ति हमसे यह कहता है कि अमुक कर्म करने से हमें अमुक लाभ होगा। हम यह जानते हैं कि यह कर्म ठीक नहीं है, दुष्कर्म है, पर उसकी प्रेरणा से हम दुष्कर्मो के सम्पादन को तैयार हो जाते हैं। हम जानते हैं कि वह दुष्कर्म करना ठीक नहीं है और उससे हमारा जीवन खतरे में पड़ सकता है। परन्तु उसकी बार बार प्रेरणा से तथा उस कर्म के लाभ को देखकर उस दुष्कर्म के क्रियान्वयन को हम राजी हो जाते हैं। प्रेरणा में हमें वह व्यक्ति यह कहता है कि अमुक दुष्कर्म कर ले और मौज मस्ती से जीवन जिए उससे बहुत लाभ होगा। वह दुष्कर्म हमारा जीवन ही परिवर्तित कर देगा। वैसी प्रेरणा से भी हम दुष्कर्म करने को तैयार हो जाते हैं। इस प्रकार दुष्कर्मो का ज्ञान तो हमें होता है परन्तु उसकी प्रेरणा हमारे ज्ञान पर बलवती हो जाती है। भारी पड़ जाती है। इस प्रकार दुष्कर्म के क्रियान्वयन का दूसरा कारण किसी की प्रेरणा भी है।

(तीन) बाध्यता के कारण :–

कभी–कभी बाध्यता के कारण भी मनुष्य दुष्कर्म करता है। वह नहीं करना चाहता पर वह दुष्कर्मो के क्रियान्वयन की बाध्यता के कारण अनुचित कर्मो को करता है। जैसे एक व्यक्ति को कोई रोजगार नहीं मिल रहा है या जो रोजगार मिला हुआ है अर्थात् वह जो कार्य कर रहा है उससे उसके जीवन की मूलभूत आवश्यकताऐं पूरी नहीं हो पा रही हैं तो भी वह कुछ अवैधानिक और अनैतिक कर्मो का चुनाव कर लेता है। अपनी रोजी रोटी को ठीक से चलाने के लिए, समाज में एक स्थान बनाने के लिए भी हम दुष्कर्मो के मार्ग का चुनाव कर लेते हैं। इस प्रकार की बाध्यता कई अन्य कारणों से भी हो सकती है। आज जो अनेक प्रकार के अनैतिक अवैधानिक कार्य होते हैं वे बाध्यता के कारण ही होते हैं। जैसे कोई मनुष्य बहुत शक्तिशाली है और यदि वह हमसे दुष्कर्मो के लिए दबाव डालता है तो हमें यह आशंका है कि हम यदि दुष्कर्म न करें तो वह हमें नुकसान पहुंचा सकता है। इस कारण भी हम दुष्कर्मो का क्रियान्वयन करते हैं। इसे भी एक प्रकार की बाध्यता ही माननी चाहिए। इसलिए अनेक कारणों से बाध्य होकर भी मनुष्य दुष्कर्मो का आचरण करने लगता है।

(11) दुष्कर्मो के परिणाम का परिमाण :–

मनुष्य जो भी दुष्कर्म बाल्यावस्था के पश्चात् करता है उस सभी का अंकन होता है। चाहें वे कर्म मानसिक हों, वाचिक हों अथवा शारीरिक हों। बाल्यावस्था जब तक रहती है तब तक मनुष्य सांसारिक मूल्यों के प्रति चेतन नहीं हो पाता हैं। जब उसे यह ज्ञान हो जाता है कि कर्म और विकर्म क्या हैं? तो वह जो भी कर्म करता है अर्थात् उसके द्वारा कृत कर्मो का परमात्मा की कर्म व्यवस्था में अंकन होने लगता है। यह अंकन निर्बाध रूप से चलता रहता है। अर्थात् उसके द्वारा जो भी कर्म होते हैं वे संचित होने लगते हैं। उन्हें इस जन्म के संचित कर्म कहा जा सकता है। पूर्व जन्मों के संचित कर्म तथा इस जन्म के संचित कर्मो का अंकन पृथक्–पृथक् होता है। इस जन्म के संचित कर्मो का परिणाम किस प्रकार प्राप्त होगा? यह भी परमात्मा की अदृश्य, अव्यक्त कर्म व्यवस्था का ही एक अंग है। अर्थात् परमात्मा की कर्म व्यवस्था ही यह निश्चय करती है इस जन्म के संचित कर्मो को किस प्रकार प्रकट किया जाए? और किस परिमाण में प्रकट किया जावे ? इस सम्बंध में मनीषीजन आभास करते हैं और हम भी कुछ आभास करते हैं। इस कारण इसका उल्लेख अति आवश्यक है। उल्लेख के पूर्व दुष्कर्म के परिमाण पर चर्चा अवश्य कर लें।

दुष्कर्मो का जो आचरण होता है उन पर प्रमुखता से ऊपर चर्चा हो चुकी है। मनुष्य का कर्तव्य है कि वह ज्ञान का अर्थात् अपने कर्तव्य का बोध करे तथा अज्ञानतापूर्वक कोई

कर्म न करे। जिस प्रकार संसार में अज्ञानतापूर्वक अपराध हो जाने पर अपराध के दंड की छूट रहती है उसी प्रकार अज्ञानतावश किए गए कर्म, दुष्कर्म के परिमाण में कुछ छूट मिलती है परन्तु हमें नियमों और प्राविधानों का ज्ञान होना चाहिए। उचित अनुचित की संज्ञानता और विवेक के अभाव में यदि दुष्कर्म होते हैं तो भी हमें परमात्मा द्वारा निर्धारित दंड व्यवस्था में कुछ छूट का लाभ प्राप्त होता है। परन्तु मनुष्य को उचित तथा अनुचित का विवेक होना चाहिए। मनुष्य को परमात्मा ने पर्याप्त साधन दिए हैं जिससे हम उचित अनुचित का ज्ञान प्राप्त कर सकते हैं। वस्तुतः मनुष्य का प्रथम कर्तव्य यह है कि वह उचित और अनुचित का ज्ञान अवश्य प्राप्त करें। इसी कारण बाल्यावस्था में ज्ञान प्राप्त करने का समय रखा गया है।

हम जब अपनी कुत्सित इच्छाओं की पूर्ति अथवा कुत्सित भावनाओं के वशीभूत होकर दुष्कर्मो का आचरण करते हैं तो परमात्मा की दंड व्यवस्था हम पर पूरी तरह से लागू होती है और हम उसकी कर्म व्यवस्था में दंड के पुण्यभागी होते हैं। हमें अपनी कामनाओं के वशीभूत होकर नाना प्रकार के दुष्कर्म नहीं करने चाहिए। यदि हम ऐसे दुष्कर्मो को करने के लिए उद्वत होते हैं तो हम निश्चितरूपेण ही उस व्यवस्था का अतिक्रमण करते हैं जो परमात्मा के द्वारा निर्मित की गई है। किसी भी प्रेरणा से हमें दुष्कर्म नहीं करने चाहिए। स्वेच्छा से जान बूझकर किए गए दुष्कर्मो के परिणामों तथा किसी के द्वारा प्रेरित किये गए दुष्कर्मो के परिणाम में विशेष अन्तर नहीं रहता है। क्योंकि हम जान बूझ कर दुष्कर्मो का आचरण कर रहे हैं तथा किसी के साथ मिलकर दुष्कर्म के सम्पादन का प्रयास कर रहे हैं।

जब मनुष्य बाध्यता के कारण अर्थात् किसी के बंधन में रहकर किसी प्रकार के दुष्कर्म का सम्पादन करता है तो बाध्यता किसी भी प्रकार की हो अथवा परिस्थितिवश हो या अन्य कारणों से हो। प्रत्येक में दुष्कर्मी कुछ छूट अवश्य पा जाता है। बाध्यता की स्थिति में मनुष्य को यह प्रार्थना करनी चाहिए कि हमें इस प्रकार की बाध्यता से पृथक् करें अर्थात् मुक्त करें। जैसे किसी शक्तिशाली व्यक्ति के दबाव के कारण हम कोई दुष्कर्म करने को बाध्य हैं तो हमारे प्रार्थना करने पर उस शक्तिशाली की सत्ता का विनाश हो सकता है और उसकी बाध्यता से हम मुक्त हो सकते हैं। इस प्रकार अज्ञानतावश किये गए दुष्कर्मो का परिणाम सज्ञानतावश किए गए दुष्कर्मो की अपेक्षाकृत कम होता है। अर्थात् उसका परिमाण हल्का होता है। परन्तु मनुष्य को उचित अनुचित को समझकर दुष्कर्मो के त्याग का प्रयास अवश्य करना चाहिए। इसके लिए परमात्मा से हमें सदैव प्रार्थना करनी चाहिए कि हे ईश्वर! हमें दुष्कर्मो के सम्पादन के मार्ग से पृथक् रखे और ऐसी परिस्थितियां न उत्पन्न करें कि जिससे हमें दुष्कर्मो के सम्पादन की ओर उन्मुख हो जाए।

(12) वर्तमान के संचित कर्मो का प्रकटीकरण :–

मनुष्य इस जन्म में जो कर्म करता है वे क्रियमाण कर्म निरन्तर सांचित होते जाते हैं तथा परिणामी होते हैं। उन संचित कर्मो का परिणाम भी पृथक्–पृथक् प्रकार से परमात्मा की व्यवस्था के अधीन हुआ करता है। इस सम्बंध में परमात्मा की बहुत वृहद् और विशाल व्यवस्था है जो प्रकृति के अधीन निरन्तर क्रियाशील रहती है। इसको समझने के लिए हम एक उदाहरण दे रहे हैं। जैसे हमने किसी व्यक्ति को किसी कारणवश गोली मार दी तो उसके पास भी यदि बंदूक है तो वह भी हमें गोली मार सकता है। गोली मारने का हमारा जो कुकृत्य है इसके क्रियान्वयन में हमें तत्काल परिणाम प्राप्त हो जाता है और इसके परिणामस्वरूप हमें गोली लग जाती है। यदि हमें गोली मारने के पश्चात् कोई परिणाम न मिला और यह मामला न्यायालय में विचाराधीन होने के पांच वर्षो बाद उस घटना के दोषी होने के कारण हमें कारावास हो गया। तो हमें हमारे कुकृत्य का परिणाम कुछ समय बाद प्राप्त हुआ। इस परिणाम को कुछ समय पश्चात् अर्थात् कालान्तर में प्राप्त होना कहा जाएगा। यदि हमारे शुभ कर्मो के फलस्वरूप हमें न तो तत्काल परिणाम मिला और न ही कालान्तर में परिणाम प्राप्त हुआ और कई वर्षो पश्चात् किसी कारण हमें गोली मारी गई तो यह अति दीर्घकालीन परिणाम है। शुभ कर्मो की प्रबलता के कारण हमें उस घटना का कोई परिणाम प्राप्त नहीं होता है तो मृत्यु के उपरान्त उस घटना के परिणाम को हमें अवश्य भुगतना पडता है और यदि हमारे शुभ कर्म फिर भी हमें बचाते रहे तो यह घटना अगले जन्मों में संचित कर्मो के रूप में कभी भी प्रकट हो सकती है। पूर्व जन्मों के कृत कर्मो का परिणाम कभी–कभी अनायास प्रकट हो जाता है और हम अपने पूर्व जन्मों के परिणामों को भुगतते हैं।

इस प्रकार किसी दुष्कर्म के परिणाम का प्रकटीकरण पांच प्रकार से होता है–

(एक) तत्काल परिणाम का प्रकट होना।

(दो) कुछ काल के पश्चात् अर्थात् कालान्तर में परिणाम का प्रकट होना।

(तीन) दीर्घकालीन अर्थात् काफी समय के पश्चात् परिणाम का प्रकट होना।

(चार) मृत्यु के पश्चात् नारकीय लोको में अनेक प्रकार के कष्टों को सहकर परिणाम का प्रकट होना।

(पांच) अग्रिम जन्मों में परिणाम का प्रकट होना।

यह एक उदाहरण है, जिसके आधार पर हम इस जन्म के संचित कर्मो के परिणाम के प्रकटीकरण को समझ सकते हैं। मनुष्य यह नहीं समझ सकता है अर्थात् यह नहीं जान सकता हे कि हमारे किस दुष्कर्म का क्या परिणाम होगा? और वह कब प्रकट हो जाएगा ? दुष्कर्मो के परिणाम के प्रकटीकरण में शुभ कर्मो के परिणाम बाधा डालते हैं। पर जब कोई मनुष्य शुभ कर्मो के आचरण में उद्वत हो जाता है तथा परमात्मा दुष्कर्मो के परिणाम प्रकट करके उसके पाप कर्मो को समाप्त करना चाहता है ताकि वह पाप शून्य हो सके। विगत कल्मषः हो सके। साधना काल में यह प्रायः देखा जाता है कि हम जब साधना के उच्च स्तर पर पहुंचते हैं तो संचित परिणाम शीघ्र प्रकट होकर हमें कष्ट देते हैं और अनेक प्रतिकूलताएं प्रकट करते हैं। ऐसी स्थिति में साधक को कभी भी अपनी साधना नहीं छोड़नी चाहिए और उससे घबराना नहीं चाहिए तथा निर्बाध रूप से अपनी तपश्चर्या को गति प्रदान करना चाहिए। इससे पूर्व संचित कर्म शीघ्र ही भस्म हो जाते हैं।

इस जन्म के संचित कर्मो के प्रकटीकरण का कोई निश्चित नियम नहीं है। यदि कोई निश्चित नियम है तो मनुष्य उसे नहीं जान सकता है। मात्र परमात्मा ही उसे जानता है परन्तु वे पांच प्रकार के काल में प्रकट होते है। जघन्य अपराधों के परिणाम शीघ्र प्रकट होते हैं अथवा दुष्कर्मी मनुष्य के दुष्कर्मो के परिणाम दबे रहते हैं और दुष्कर्मो के संचय के फलस्वरूप उसे किसी गंभीर परिणाम की आशंका हो जाती है। दुष्कर्मी मनुष्य यदि लगातार दुष्कर्म करके सुखी प्रतीत हो रहा है तो समझना चाहिए कि उसके शुभ कर्म तेजी से समाप्त हो रहे हैं। शुभ कर्मो के समाप्त होते ही उसकी प्रतिकूलताऐं आरम्भ होती हैं और वह अपने दुष्कर्मो का गंभीर परिणाम भोगता है। परमात्मा की कर्म व्यवस्था के अधीन कर्म के प्रकटीकरण का विधान है जो अत्यंत रहस्यप्रद है। जिससे स्पष्टरूपेण से समझा और समझाया जाना असंभव है। इसके कुछ प्रकटीकरण का संकेत मात्र हुआ है। जो अनुमान और प्रभाव के आधार पर आधारित है।

(13) सत्कर्म किन कारणों से होते हैं :–

दुष्कर्मो का आचरण मनुष्य अधिकांशतः कामना, क्रोध तथा लोभ के वशीभूत होकर मनुष्य करता रहता है। यह दुष्कर्मो के आधारभूत कारण हैं। इस कारण यदि मनुष्य कामना, क्रोध, तथा लोभ का परित्याग कर दे तो दुष्कर्मो का आचरण का स्वतः ही त्याग हो जाएगा। इस प्रकार सत्कर्मो का आचरण भी मनुष्य अनायास नहीं करता है। उसके लिए भी प्रेरणा प्राप्त होती है। सत्कर्मो के क्रियान्वयन की प्रेरणा कहॉ से प्राप्त होती है? यह भी विचारणीय तथ्य है। सत्कर्मो के आचरण के प्रमुख तथ्य निम्न प्रकार हैं, जिन्हें कारण के रूप में जानना चाहिए।

(क) ईश्वर की कृपा से :–

परमात्मा जब किसी कारणवश मनुष्य को शुभ कर्मो की ओर अग्रसर होने की और उनके सम्पादन की प्रेरणा देता है तो मनुष्य सत्कर्मो की ओर उन्मुख हो जाता है। मनुष्य पर परमात्मा की कृपा के कारण को जाना जा पाना असंभव है। परमात्मा मनुष्य पर किस कारण से कृपा करता है? यह तो वही जानता है। मनुष्य और परमात्मा का शाश्वत सम्बंध है। जगत के सम्बंध क्षणिक हैं। उनका कोई आधार नहीं है। वे कुछ काल के लिए हैं परन्तु परमात्मा का सम्बंध सर्वकालिक है। मनुष्य जगत के सम्बंधों को प्रमुख मान लेता है तो परमात्मा के सर्वकालिक सम्बंध की उपेक्षा करता है। उसको अनदेखा करता है। तब मनुष्य अनेक प्रकार की समस्याओं में फंस जाता है। परमात्मा से सम्बंध मान लेने पर उसकी कृपा की स्पष्ट प्रतीति होती है और यह आभास होता है कि परमात्मा हम पर कृपा कर रहा है। जैसे संसार में हम जब किसी से अपना सम्बंध स्थापित कर लेते हैं अथवा स्थापित करने का प्रयास करते हैं तो जिससे हम सम्बंध स्थापित करना चाह रहे हैं वह भी हमसे सम्बंध स्थापित करने का इच्छुक होता है। यदि हम ही इच्छुक न हो तो अन्य व्यक्ति हमसे सम्बंध स्थापित करने को क्यों इच्छुक होगा? अर्थात् नहीं होगा। वह परमात्मा तो हमारा सृष्टि के आदिकाल से सम्बंधी है और हमने इस दीर्घकालीन सम्बंध को तोड़ने का प्रयास किया है। जब हम इसे स्थापित करने का प्रयास करते हैं तो वह परमात्मा भी हमसे सम्बंध बनाना चाहता है और अपनी कृपा कर देता है। इस कृपा के कारण हम सत्कर्मो की ओर उन्मुख हो जाते हैं। इस लिए परमात्मा की कृपा से भी मनुष्य सत्कर्म करने लगता है।

(ख) संचित कर्मो के फलस्वरूप :–

मनुष्य पूर्वजन्म के संचित कर्मो अथवा इस जन्म के संचित कर्मो के परिणाम से भी कभी–कभी सत्कर्मो की ओर उन्मुख हो जाता है। पूर्वजन्म के संचित कर्मो के परिणाम स्वरूप मनुष्य शुभ कर्मो के आचरण की ओर उन्मुख होता है। यह सब परमात्मा की कर्म व्यवस्था के अधीन है। संचितकर्मो के परिणाम से मनुष्य की प्रकृति का अनायास ही परिवर्तन हो जाता है जो प्रकृति कल तक अशुभ कर्मो की ओर उद्वत थी वह शुभ कर्मो की ओर उद्वत हो जाती है। मुख्यतः मनुष्य प्रकृति के अनुकूल ही कर्म करता है। प्रकृति वह विचारण शक्ति है जो मनुष्य के अंतःकरण में रहती है जिससे मनुष्य नाना प्रकार के कर्मो का सम्पादन करता है। इस प्रकार सत्कर्मो के आचरण के कारणों में पूर्वजन्म के अथवा इस जन्म के संचित कर्मो के परिणाम भी कारण हो सकते हैं। इसका सहज अभिप्राय यह है कि मनुष्य के शुभ संचित कर्म जब प्रकट होने लगते हैं तो वह सत्कर्मो के सम्पादन का प्रयास करता है।

(ग) किसी विशिष्ट कामना के कारण :–

मनुष्य के मन में जब कोई विशेष कामना उत्पन्न हो जाती है तब भी वह उस कामना की पूर्ति का आकांक्षी हो जाता है। यदि उसके मन में यह तथ्य बैठ जाता है कि हमारी यह कामना हमारे शुभ कर्मो के क्रियान्वयन से पूर्ण हो सकती है तब वह उस कामना की पूर्ति की इच्छा के कारण सत्कर्मो के सम्पादन की ओर उन्मुख होता है। यह विशेषकर तब होता है जब संसार के क्रियाकलापों से मनुष्य अपनी कामना की पूर्ति को नही देखता है। संसार से कामना की पूर्ति न होते देख उसके मन में शुभ कर्मो के आचरण का तथ्य प्रकट हो जाता है। वह मानता है कि हमारी विशिष्ट कामना शुभ कर्मो के आचरण से पूरी हो सकती है। तब वह शुभ कर्मो के प्रकार तथा उसके सम्पादन की स्थिति पर विचार करता है। इस कारण मनुष्य के सत्कर्मो के आचरण का एक कारण उसकी कामना भी हो सकती है, जिसकी पूर्ति हेतु मनुष्य शुभ कर्मो का आचरण करने लगता है।

(घ) किसी घटना के कारण :–

मनुष्य के जीवन में अनेक प्रकार की घटनाएं होती रहती हैं, क्योंकि मनुष्य का जीवन घटनाओं से ही आच्छादित रहता है कोई भी घटना मनुष्य के जीवन को परिवर्तित कर सकती है। जैसे हम किसी घटना के शिकार होते हैं और उस घटना में हमारी मृत्यु नहीं होती है। हमारा बचाव हो जाता है अर्थात् हम मृत्यु के निकट जाकर के भी बच जाते हैं। मृत्यु से बचाव का कारण हम परमात्मा को मानते हैं और यह कहते हैं कि परमात्मा की कृपा से ही हमारा बचाव हो गया। वरना हम मर गए होते। यह ऐसी घटना है जो मनुष्य के मन में परमात्मा के प्रति तथा उसकी व्यवस्था के प्रति असीम श्रद्धा उत्पन्न कर देती है और ऐसी स्थिति में हम दुष्कर्मो के आचरण को छोड़ देते हैं तथा पूरी शक्ति से सत्कर्मो के आचरण का प्रयास करते हैं। इस प्रकार की अनेक घटनाऐं मनुष्य के जीवन में हो सकती है। जैसे हम किसी असाध्य रोग से पीड़ित हो जाए और यह चिकित्सकों की ओर से स्पष्ट हो जाए कि इस असाध्य रोग का कोई भी निवारण नहीं है। हमारी मृत्यु में कुछ ही दिन अवशेष है। यदि किसी कारणवश परमात्मा से प्रार्थना करने पर हमारा जीवन बच जाता है और हमें जन्म मिलता है। तो भी हम परमात्मा की ओर उसकी व्यवस्था की ओर उन्मुख हो जाते हैं और उसकी सत्ता को स्वीकार करते हैं तथा यह कहते है कि अब जो भी जीवन अवशेष है वह परमात्मा की सान्निध्यता में और सत्कर्मो के सम्पादन में बीतेगा और हम सत्कर्मो का सम्पादन करने भी लगते हैं। इस प्रकार किसी विशेष घटना के कारण भी

मनुष्य सत्कर्मो के क्रियान्वयन की ओर उन्मुख हो जाता है और जीवन भर शुभ कर्मो का आचरण करता है।

(ङ) अपने कल्याण की इच्छा से :–मनुष्य बड़ा ही संवेदनशील प्राणी है। परमात्मा ने मनुष्य को मन और बुद्धि के रूप में ऐसे दो तत्त्व अर्थात् दो शक्तियां प्रदान की हैं जो अव्यक्त रहकर भी व्यक्त से अधिक कार्य करती हैं। मनुष्य जब कभी विचार करने लगता है कि हमारे जीवन का उद्देश्य क्या है ? और हम किन कारणों से पृथ्वी पर आये हैं? क्या मानव जीवन का उद्देश्य सांसारिकता की प्राप्ति ही है? अन्य कुछ नहीं है। तब यदि उसे संसार की वास्तविकता का उसकी क्षणिकता का ज्ञान हो जाता है तब भी वह अपने कल्याण के मार्ग के विषय में विचार करता है। संसार का सारहीन होना, अस्थिर और नाशवान होना, यह विचार जब मनुष्य की बुद्धि में बैठ जाता है तो मनुष्य अपने कल्याण के मार्ग की खोज करता है। अपने कल्याण के मार्ग की खोज में उसे सत्कर्मो की प्रेरणा मिलती है। तब वह अपने कल्याण की इच्छा से सत्कर्मो का आचरण करने लगता है। यह सब विचार इसी कारण से मनुष्य के मन में आ सकते हैं। इसलिए मनुष्य कभी कभी अपने कल्याण की आकांक्षा से भी शुभ कर्म करने लगता है।

(च) स्वर्ग प्राप्ति की कामना से :–

मनुष्य चाहें विचारवान हो, विवेकशील हो, अथवा मूर्ख और अविवेकी हो उसे यह तथ्य ज्ञात रहता है कि अंततः हमारी मृत्यु जो जाएगी। यह मनुष्य जीवन तो एक समय तक ही सीमित है। इस जन्म के पश्चात् भी जीवन है। उस जीवन के बारे में वर्तमान समय में जाना जा पाना असंभव है। शास्त्रों में मृत्यु के पश्चात् भी जो जीवन है उसका उल्लेख आता है। इस उल्लेख में दो प्रकार की स्थितियां प्रकट हो करके हमारे समक्ष आती हैं जिन्हें नरक और स्वर्ग कहा जाता है। नरक में अनेक प्रकार की यातनाऐं हैं और स्वर्ग में अनेक प्रकार के सुख हैं। प्रत्येक मनुष्य सुख चाहता है। यह मनुष्य की स्वाभाविक प्रवृत्ति है कि वह शुभ का आकांक्षी होता है और वह सुख की कामना करता है। मृत्यु के उपरान्त भी मनुष्य सुख की चाहना करता है। इस कारण वह स्वर्ग को चाहता है। यह तथ्य सामान्य रूप से सभी को ज्ञात रहता है कि हम शुभ कर्मो के सम्पादन से ही मृत्यु के उपरान्त सुख को प्राप्त कर सकते हैं। यह भी एक पारलौकिक कामना है। इस कामना के वशीभूत होकर भी कभी–कभी मनुष्य शुभ कर्मो का आचरण करने लगता है तथा शुभ कर्मो की ओर मुड़ता है। इस प्रकार स्वर्ग की प्राप्ति की इच्छा से भी शुभ कर्मो का सम्पादन होता है।

(छः) मुक्ति की कामना से :–

मनुष्य जीवन के चार पुरूषार्थो का वर्णन शास्त्रों में आता है जिन्हें धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष कहा जाता है। पहले तीन को तो पुरूषार्थ कहते हैं और अंतिम को मोक्ष कहकर परम पुरूषार्थ कहते हैं। मुक्ति की कामना एक विशेष प्रकार की कामना मानी जाती है और यह कामना बिरले लोग ही करते हैं। अर्थात् इस संसार में ऐसे मनुष्य अत्यंत दुर्लभ हैं जो मुक्ति की कामना करते हैं और उसके लिए पूरी शक्ति से प्रयत्न भी करते हैं। सुख की चाहना तो बहुत मनुष्यों में होती है। लगभग सभी मनुष्य सुख की चाहना करते हैं, क्योंकि सुख हमें संसार में स्पष्ट प्रतीत होता है, भासता है। सांसारिक सुखों को प्रत्येक व्यक्ति चाहता है, क्योंकि सांसारिक विषयों में मधुरता का आभास होता है। वस्तुतः मनुष्य सांसारिक सुखों की चाहना में अपना जीवन ही समाप्त कर देता है। मुक्ति की कामना चूंकि अदृश्य कामना है और अत्यंत कठिनता से प्राप्त होने वाली है तथा यह निश्चित भी नहीं होता है कि हमारे सत्कर्मो के उपरान्त हमें निश्चित रूप से मुक्ति प्राप्त होगी अथवा नही होगी। इसलिए मुक्ति की कामना बिरले मनुष्य ही करते हैं। जब मनुष्य मुक्ति की कामना कर लेता है तो वह अपने द्वारा सम्पादित कर्मो का गहनता से परीक्षण करता है और उन पर नित्य दृष्टि रखकर उन्हें परखता है तथा अशुभ कर्मो से और सांसारिकता से मुंह मोड़ लेता है। इस प्रकार मुक्ति की कामना से मनुष्य सत्कर्मो का सम्पादन करता है।

शुभ कर्मो के आचरण के अन्य भी कारण हो सकते हैं। उपरोक्त प्रकार से कुछ कारणों का उल्लेख हुआ। समग्र कारण इन्हें नहीं मानना चाहिए, क्योंकि शुभ कर्मो के आचरण की प्रेरणा दुष्कर्मो की वास्तविकता और उसके परिणाम तथा परिणाम से उत्पन्न होने वाले भय के कारण भी होती है। वस्तुतः मनुष्य जब सत्कर्मो का आचरण करने लगता है तब यही आचरण उसके कल्याण का हेतु बन जाता है।

(14) सत्कर्मो के तीन प्रकार (यज्ञ,दान,तप,कर्म):–

मनुष्य के तीन निश्चित कर्तव्य कर्म माने जाते हैं जिन्हें यज्ञ, दान, तप कर्म कहा जाता है। यह तीनों कर्म अवश्यमेव ही करने चाहिए। यज्ञ करना भी आवश्यक है। तप करना भी आवश्यक हैं और अपनी वास्तविक स्थिति के अनुसार दान कर्म भी अनिवार्य कर्म कहा जाता है। इन तीन प्रकार के सत्कर्मो के आचरण से मनुष्य को पुण्य लाभ स्वतः ही प्राप्त होता है। इस प्रकार तीन कर्मो को सत्कर्मो की श्रेणी में रखा जाता है। प्रत्येक मनुष्य को इन तीन प्रकार के सत्कर्मो को और उनके भेद को जानना चाहिए। इसके ज्ञान के लिए इस तथ्य का प्रस्तुतीकरण यहां पर किया जा रहा है।

(क) यज्ञ रूपी कर्म :–

यज्ञ रूपी सत्कर्म बहुत महत्वपूर्ण कर्म है। साधारणतया यज्ञ का अर्थ वैदिक और शास्त्रीय यज्ञों के अनुष्ठान से समझा जाता है। परन्तु हमारे जो कर्तव्य कर्म हैं वे भी यज्ञ के रूप में ही समझे जाने चाहिए। पवित्र वेदों में अनेक प्रकार के अनुष्ठानों का वर्णन है। सृष्टि के आदिकाल से वेदों का प्राकट्य हो गया और यज्ञों की व्यवस्था तभी से आरम्भ हुई। यज्ञों का अनुष्ठान भी सृष्टि के आदिकाल से ही हो रहा है। यज्ञादिक शुभ कर्मो के अनुष्ठान से मनुष्य को नाना प्रकार के सांसारिक फल प्राप्त होते हैं। जिस प्रयोजन के लिए यज्ञ किया जाता है वह प्रयोजन विधिवत यज्ञों के सम्पादन से पूरा हो जाता है। यज्ञों के अनुष्ठान की विधिवत विवेचना वेदों और पौराणिक ग्रंथों में विस्तार से की गई है जिनके आधार पर आज भी यज्ञों का अनुष्ठान हो रहा है।

यज्ञ का दूसरा अर्थ मनुष्य के कर्तव्य कर्मो से है, जिसका आचरण मनुष्य को अवश्य करना चाहिए। मनुष्य के संसारिक जीवन में वर्ण तथा आश्रम के अनुसार कर्तव्य कर्म हैं। जैसे बाल्यावस्था में उचित शिक्षा का ग्रहण करना ग्रहस्थ आश्रम में अपने परिवार भरण पोषण रूपी कर्तव्य कर्म करना। इसी प्रकार प्रत्येक आश्रम में मनुष्य के कर्तव्य कर्म हैं जिन्हें मनुष्य को करना यथेष्ट होता है। ऐसे कर्तव्य कर्मो को भी यज्ञ की संज्ञा दी जाती है। चाहें वैदिक यज्ञों का अनुष्ठान हो, चाहें आश्रम के अनुसार कर्तव्य कर्मो का आचरण हो सबके सब सत्कर्मो की श्रेणी में ही आते हैं। सत्कर्मो के आचरण समझे जाते हैं। कर्तव्य कर्मो का विस्तार से वर्णन हमारे धर्मशास्त्रों में कियपा गया है। मनुष्य को उनका आचरण करना चाहिए। जैसे पुत्रों की शिक्षा व्यवस्था परिवार का भरण पोषण, माता पिता की सेवा आचार्यो की आज्ञा का पालन, अतिथि सत्कार आदि आदि कर्म भी यज्ञ के रूप में हमें समझने चाहिए तथा इनका सम्पादन करना चाहिए।

(ख) तप रूपी सत्कर्म :–

तप रूपी सत्कर्म के कई प्रकार हैं। वस्तुतः तप के तीन प्रकार का वर्णन शास्त्रों में विशेष रूप से आता है, जिन्हें शारीरिक तप, वाणी सम्बंधी तप तथा मन सम्बंधी तप कहा जाता है। यह तीनों प्रकार के तप विशेष प्रकार के कर्म हैं, जो सत्कर्मो की श्रेणी में आते हैं। इन सबसे पृथक् प्रकार का तप परमात्मा के नाम का जप रूपी तप है, जो शारीरिक, वाचिक, और मानसिक तपों से श्रेष्ठ माना जाता है। यह तथ्य इस प्रकार भी कह सकते हैं कि जब शरीर वाणी और मन का परमात्मा में लय हो जाए तो इस प्रकार का तप विशेष श्रेणी का तप है। उक्त तीनों प्रकार के तपों का पृथक्–पृथक् अवलोकन कीजिए–

(एक) शारीरिक तप : किसी भी प्राणी की हिंसा न करना अर्थात् उसे कष्ट न देना। ब्रह्मचर्य व्रत का पालन करना और यह पालन मन, वाणी और शरीर से करना। अपने को बाह्य और आंतरिक रूप से शुद्ध रखना, सरल स्वभाव से रहना और वैसा व्यवहार करना, किसी भी प्रकार की कुचेष्टा न करना, देवगणों की विधि पूर्वक उपासना करना। अपने आचार्यो, गुरूजनों की सेवा करना, शास्त्रों के मर्मज्ञ तत्त्वदर्शी मनुष्यों की सेवा करके उन्हें प्रसन्न करना और सम्मान देना यह सभी कर्म शारीरिक तप की श्रेणी में आते हैं। शारीरिक तप का प्रमुख सम्बंध शरीर से है। जब शरीर को हम सरल बना लेते हैं तो शरीर सम्बंधी तप स्वतः ही सम्पादित होता है। इस कारण शरीर को सरल बनाने का प्रयास करना चाहिए।

(दो) वाणी सम्बंधी तप : मनुष्य जब दूसरे किसी अन्य मनुष्य के प्रति वाणी से ऐसा वाक्य नहीं कहता है जिससे उसको कष्ट हो, कष्ट की अनुभूति हो, इसके अतिरिक्त जैसा देखा है, जैसा अनुभव किया है वैसा ही यथार्थ रूप से बोलना, प्रकट करना, मनुष्यों के कल्याण के वचन कहना, जिसे मनुष्यों का हित हो। मन से अनेक प्रकार के मंत्रों का जाप करना, अनावश्यक चर्चाओं से बचना, सांसारिक व्यसनों ओर विलासतापूर्ण वार्तालापों का निषेध करना यह सबका सब वाणी सम्बंधित तप कहा जाता है। वाणी सम्बंधी तप विशेष कर वाणी के संयमन से सम्बंधित है। मौन होना, मौन रहकर परमात्मा का निरन्तर चिंतन करना एक विशेष प्रकार का वाणी सम्बंधी तप है। मौन व्रत को भी वाणी सम्बंधी तप होने की विशेषता प्राप्त है। क्योंकि मनुष्य जितना अधिक बोलता है उतना अधिक ही उसकी उर्जा का अपव्यय होता है। इसलिए मौन को विशिष्ट वाणी सम्बंधी तप की संज्ञा दी जाती है।

(तीन) मानसिक तप : मनुष्य जब मन से मन में ही आनन्दित रहता है। प्रसन्न रहता है। इस प्रसन्नता के कारण मन में सौम्य भाव आ जाता है मन में शान्ति आने पर मनुष्य अपने कल्याण के मार्ग के बारे में विचार कता है तो इस कार्य को मननशीलता कहते हैं। मन की स्थिति स्वभावताः चंचल होती है और वह चंचल मन सदैव प्रमथनशील स्थिति में रहता है परन्तु जब मनुष्य मन को रोक कर परमात्मा के विषय का चिंतन का करता है तथा अपने मानसिक भावों को शुद्ध कर लेता है और बुरे विचारों को अपने मन से बाहर निकाल देता है तो इस प्रकार के तप को मानसिक तप कहते हैं। मानसिक तप विशेष प्रकार का तप है। जिससे मनुष्य को शान्ति, परम शान्ति, स्वतः ही प्राप्त हो जाती है, क्योंकि चंचल मन अशान्ति का हेतु है, संयमित मन जो मानसिक तप की श्रेणी में आता है शान्ति का हेतु है।

तप के तीन अन्य प्रकार भी कहे गए हैं। जिन्हें सात्त्विक, राजस तथा तामस कहा जाता है। इन तीनों प्रकार के शारीरिक, वाणी, मानसिक, तप के तीन तीन प्रकार हैं। इन

तपों के प्रकार के ज्ञान के लिए गीताज्ञान के 19वें खण्ड का अध्ययन करना चाहिए। जब मनुष्य अपने कर्मो में फल अर्थात् परिणाम की इच्छा को छोड़ देता है तो दूसरों के कल्याण के लिए कार्य करता है तो इस प्रकार के तप को सात्त्विक तप कहते हैं। अपने मान सम्मान, आदर, संमाज में स्थान प्राप्त करने के लिए और समाज में दिखावे के लिए जो तपश्चर्या की जाती है वह राजसी तप कहलाती है, जिसमें फल की आकांक्षा विशेष होती है। ऐश्वर्य सम्मान आदि का भाव रहता है। यह भी राजसी तप का स्वरूप है। जब मनुष्य अपने शरीर को कष्ट देकर दूसरों के अहित,विनाश की आशा और आकांक्षा को मन में रखकर आयोजन करता है तब इस प्रकार के तप को तामसी तप कहते हैं।

(चार) विशिष्ट तपश्चर्या : जब मनुष्य एक मात्र परमात्मा का आश्रय ग्रहण कर लेता है तथा सभी प्रकार के कर्म फलों का त्याग करके संसार के आश्रय से विहीन होकर एक मात्र परमात्मा को ही सर्वत्र देखता है तथा उसी की सत्ता को ही जानता है। तब वह परमात्मा की विशिष्ट उपासना करता है। परमात्मा की विशिष्ट उपासना सर्वोत्तम प्रकार की तपश्चर्या कही जाती है। परमात्मा का नित्य स्मरण करने से समस्त प्रकार के तप स्वतः ही हो जाते हैं। जो विशिष्ट साधक इस प्रकार परमात्मा का स्मरण का सेवन करता है तथा परमात्मा को समस्त चराचर जीवों का स्वरूप समझ कर अनन्य भाव से चिंतन करता है तब वह तपश्चर्या विशेष प्रकार की कही जाती है।

(ग) दानरूपी सत्कर्म :–

सत्कर्मो में दान का बड़ा महत्व आ गया है। दान रूपी सत्कर्म का प्रचलन आदिकाल से है। गरीबों की सेवा हेतु भूखे मनुष्यों के भोजन के लिए, निर्धन निर्बल वर्ग की सहायतार्थ, रोगियों की सेवा के लिए, असहाय गरीब छात्रों की शिक्षा सहायता के लिए, सामाजिक कार्यो के लिए, आध्यात्मिक अनुष्ठानों हेतु, नैतिक शिक्षा के प्रचार प्रसार के लिए संत महात्माओं की सेवा हेतु पात्रों को दान देने का प्रचलन रहा है। यह दान रूपी सत्कर्म से मनुष्य को शुभ कर्मो का लाभ अनायास प्राप्त हो जाता है। दान रूपी सत्कर्म को करना मनुष्य का कर्तव्य है। शास्त्रों में दान के तीन प्रकारों का उल्लेख आता है। इन्हें सात्त्विक, राजस तथा तामस कहा जाता है।

(एक) सात्त्विक दान :–

जो दान मनुष्य अपना कर्तव्य समझ कर करता है उसमें कुछ विशेषतः रहती है। कर्तव्य कर्म के दान में तीन तथ्यों को दृष्टि में रखना चाहिए एक तो मनुष्य को उचित पात्र का चुनाव कर लेना चाहिए अर्थात् जिस मनुष्य को दान दिया जाता है वह वास्तव में

उसका पात्र है अथवा नहीं। जैसे हम किसी धनवान व्यक्ति को दान देंगे तो उसको दान की आवश्यकता ही नहीं है। इस प्रकार के दान का कोई प्रतिफल हमें प्राप्त नहीं होगा। इस कारण दान की पात्रता का बड़ा महत्व है। उचित समय में, उचित व्यक्ति को, बिना फल की आकांक्षा के जो दान दिया जाता है उसे सात्त्विक दान कहते हैं। इस प्रकार सात्त्विक दान की तीन शर्ते हैं। उचित स्थान पर, उचित समय पर, उचित पात्र को दान देना ही सात्त्विक दान की श्रेणी में आता है। जैसे कोई भिखारी अपने व्यसन के लिए नशा, आदि की पूर्ति के लिए भीख मांग रहा है और वह बसों रेलगाड़ियों में व्यवसायिक रूप से घूम रहा है, तो जिस स्थान पर है वह भी उचित नहीं है। जिस काल में है वह भी उचित नहीं है और इस कारण वह दान लेने का पात्र भी नहीं है, क्योंकि उसका उद्देश्य अपना व्यसन अर्थात् नशा आदि की पूर्ति है। इस प्रकार के दान को सात्त्विक दान नहीं कहा जा सकता। यदि वस्तुतः कोई व्यक्ति भूखा है और वह अपने श्रम से धन कमाने में अक्षम है तो उस भूखे व्यक्ति को अक्षमता की स्थिति में कुछ धन दिया जाए ताकि उसकी भूख का निवारण हो सके तो इस प्रकार का दान सात्त्विक दान कहा जाता है। इसमें समय आदि का भी ध्यान रखने की आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः किसी पात्र व्यक्ति की सहायता बिना फल की इच्छा के की जाए तो इस तरह के दान को सात्त्विक दान की संज्ञा दी जाती है।

(दो) राजसी दान :–

राजसी दान का भी शास्त्रों में उल्लेख आता है। यदि कोई व्यक्ति कष्ट के साथ किसी की सहायता करता है तथा उसके प्रतिकार में अर्थात् बदले में कुछ लाभ चाहता है। लाभ के उद्देश्य को दृष्टिगत् रखकर यदि कोई सहायता करता है तो यह दान राजसी दान की श्रेणी में आता है। हम किसी से किसी उचित कार्य के लिए कोई धन की याचना करें और उस व्यक्ति को उचित कार्य के लिए धन देने में कष्ट का आभास हो तो इस प्रकार दिया गया दान राजसी दान का स्वरूप हो जाएगा। इसी प्रकार यदि हम किसी व्यक्ति की सहायता करें और उसके बदले में यह भावना रहे कि हम जो दान दे रहे हैं उससे हमें पुण्य लाभ प्राप्त होगा अथवा भविष्य में हमें कुछ सहायता प्राप्त होगी। ऐसा भाव आ जाने पर वह सहायता राजसी दान के रूप में स्वतः ही परिवर्तित हो जाती है। इस प्रकार राजसी दान में दो तथ्य विशिष्ट हैं। एक कष्टपूर्वक किसी की सहायता करना और दूसरे बदले की भावना से सहायता करना। राजसी दान का हमें कोई उचित परिणाम प्राप्त नहीं होता है। ऐसा शास्त्रों में उल्लेख आता है।

(तीन) तामसी दान :–जब हम किसी व्यक्ति को असम्मानपूर्वक दान देते हैं अर्थात् यदि कोई व्यक्ति अपने लिए कुछ सहायता की याचना कर रहा है तो हमारे मन में उस व्यक्ति

के प्रति असम्मान का भाव यदि प्रकट हो जाता है तथा हम उसे धिक्कारते हुए कुछ धन उसको देते हैं तो इस प्रकार का दान तामसी दान कहा जाता है। इसके साथ ही यदि कोई व्यक्ति दान का पात्र भी नहीं है यदि उसको भी हम कोई सहायता करते हैं तो भी इसको तामसी दान का स्वरूप ही समझना चाहिए। जैसे किसी को भोजन वस्त्र चिकित्सा आदि की सहायता की आवश्यकता नही है परन्तु उसकी हम सहायता करते हैं तो इस सहायता का कोई प्रतिफल हमें प्राप्त नही होता है तथा यह दान भी तामसी दान की श्रेणी में रखा जाता है। उचित पात्र को न देकर, उचित समय को न देखकर और उचित स्थान को न देखकर जो दान दिया जाता है वह फलदायी नहीं होता है तथा उससे दान देने वाले का न तो हित होता है और न ही दान प्राप्त करने वाले का कुछ हित हो पाता है। इस कारण दानरूपी सत्कर्म को हम जब वांछित व्यक्ति को अर्थात् उचित पात्र को उचित समय देखकर उचित स्थान पर दान देते हैं तो वह दान सत्कर्म की श्रेणी में आता है और उसका हमें निश्चित फल प्राप्त होता है। ऐसा दान करना मनुष्य का कर्तव्य कर्म कहा जाता है और यह कर्तव्य कर्म हमें निश्चित रूप से करना चाहिए।

(15) सत्कर्मो के परिणाम का प्रकटीकरण :–

सत्कर्मो के परिणाम मनुष्य को बिना किसी प्रयास के स्वतः ही परमात्मा की व्यवस्था के आधार पर प्राप्त हो जाते हैं। इसमें फल की आकांक्षा करने पर अर्थात् परिणाम की इच्छा से जो सत्कर्म होता है उसका परिणाम कम मात्रा में मिलता है। इस कारण फल की इच्छा न करके हमको सत्कर्म करने चाहिए। ऐसा करने से वे कर्म निश्चित ही फलदायी होते हैं। जैसे चक्की में गेहूं अथवा अन्य अनाज पड़ने पर आटा निकलता है वैसे ही कर्म व्यवस्था रूपी चक्की में सत्कर्म के करने से अनुकूल परिणाम अवश्य प्राप्त हो जाते हैं। इसमें फल की इच्छा करने से अथवा नहीं करने से कोई प्रश्न उपस्थित नहीं होता है। इस कारण अनुकूल परिणाम हेतु अथवा पापों के उन्मोचन हेतु हमें यज्ञ दान तपरूपी कर्म अवश्य ही करने चाहिए। यज्ञ दान तप रूपी कर्म करने से हमें उनका उचित परिणाम परमात्मा की कर्म व्यवस्था के आधार पर निश्चितरूपेण प्राप्त होता है। परमात्मा की यह कर्म व्यवस्था बहुत विशाल और अदृश्य है। इसकारण सत्कर्मो के परिणाम हमें पांच प्रकार से प्राप्त होते हैं,सत्कर्मो के परिणाम प्रकटीकरण की दृष्टि से उन्हें यहां स्पष्ट कर रहे हैं।

(क) सत्कर्मो का तत्काल प्रकटीकरणरूपी परिणाम।

(ख) कुछ समय पश्चात् अर्थात् काल के अंतर में सत्कर्मो का प्रकटीकरण परिणाम।

(ग) पर्याप्त समय पश्चात् अर्थात् दीर्घकाल में सत्कर्मो के प्रकटीकरण का परिणाम।

(घ) मृत्यु के पश्चात् अन्य लोकों की प्राप्ति के रूप में सत्कर्मो के प्रकटीकरण का परिणाम।

(ङ) इस जन्म के पश्चात् अग्रिम जन्मों में सत्कर्मो के प्रकटीकरण का परिणाम।

(क) तत्काल प्रकटीकरण :–

अनेक प्रकार के सत्कर्मो का परिणाम हमें तत्काल प्राप्त हो जाता है। जैसे पूर्व में पुत्र प्राप्ति के लिए यज्ञ करने का विधान था तथा अन्य प्रकार के यज्ञों में जो जो परिणाम का विधान है वह यज्ञों के सुचारू अधिष्ठान के पश्चात् हमें प्राप्त हो जाता है। अर्थात् वह तत्काल ही प्राप्त होता है। देवी देवताओं की विधिवत उपासना के प्रकरण में भी तत्काल परिणाम मिलने का प्रकरण आता है। जिसके लिए क्षिप्रम् पद का प्रयोग होता है। क्षिप्रम् का अर्थ हेाता है कि हमें देवी देवताओं की उपासना से तत्काल ही फल की प्राप्ति होती है। देवती देवताओं की उपासना के विधान हैं और उस विधान का अनुपालन जब होता है तब देवी देवता प्रसन्न होकर अपने अधिकार क्षेत्र के अन्तर्गत सत्कर्मो का शीघ्र परिणाम प्रदान कर देते हैं। इस प्रकार तत्काल ही सत्कर्मो का परिणाम प्रकट होता है। अन्य सत्कर्मो के परिणाम भी परमात्मा की कर्म व्यवस्था के अधीन तत्काल प्रकट हो सकते हैं। परमात्मा जब अपने भक्तों पर कृपा करते हैं तो वे अनायास ही फल को प्रकट कर देते हैं और भक्तों के मांगे जाने पर अथवा न माने जाने पर भी उनकी आतंरिक इच्छा के अनुकूल परमात्मा की कृपा से भक्तों को तत्काल फल प्राप्त हो जाया करता है। हमारे किस सत्कर्म का कर्मफल कब प्रकट हुआ? यह हम नहीं जान सकते हैं क्योंकि परमात्मा की यह कर्म व्यवस्था अदृश्य और अव्यक्त है। इस प्रकार हमारे कुछ सत्कर्मो का तत्काल फल हमें प्राप्त होता हैं जिसे तत्काल प्रकटीकरण कहा जाता है।

(ख) कालान्तर प्रकटीकरण :–

हमारे सत्कर्मो का परिणाम जब कुछ समय के पश्चात् प्रकट होता है तो उसे परिणाम का कालान्तर प्रकटीकरण कहा जाता है। जैसे एक सत्कर्मी मनुष्य निरन्तर सत्कर्म का आचरण करता है परन्तु उसे अपने सत्कर्मो का परिणाम प्रतीत नहीं होता है तो उसका अभिप्राय है कि उसके द्वारा किये गए शुभ कर्मो का निरन्तर संचय हो रहा है। वे कुछ समय पश्चात् प्रकट होते हैं। परमात्मा हमारी स्थितियों के बारे में भली प्रकार जानता है वह यह भी जानता है कि हमें कब किस वस्तु की आवश्यकता है? जब वह हमें प्रतिकूल स्थितियों मे ंदेखता है तो वह तत्काल परिणाम प्रकट कर देता है और प्रतिकूल परिसिथितयां अनुकूल हो जाती हैं। यह अनायास होती है। साधक पुरूष इसका आभास कर लेता है।

सत्कर्मो का परिणाम जब तत्काल प्रतीत न हो अर्थात् हमारी प्रतिकूल स्थितियां समाप्त न होती प्रतीत हो अथवा अनुकूल न हो पाए तो हमें यह समझना चाहिए कि हमारे सत्कर्मो के परिणाम का संचय परमात्मा की व्यवस्था में हो रहा है और वह कालान्तर में फल को प्रकट करेंगे। कालान्तर में सत्कर्मो का परिणाम स्वतः प्रकट होता है और हमें अचानक सांसारिक लाभ और प्रतिकूलताऐं प्रतीत होने लगती हैं। इस प्रकार फलों के प्रकटीकरण का कुछ निश्चित काल के बाद प्रकट होना कालान्तर प्रकटीकरण कहलाता है। परमात्मा की समस्त कर्म व्यवस्था अदृश्य है और वह कब फलदायी होगी? इसे भी जाना जा पाना असंभव है। इसलिए जो शुभ कर्मो के परिणाम कुछ समय पश्चात् प्रकट होते हैं उन्हें कालान्तर प्रकटीकरण कहा जाता है।

(ग) दीर्घकालीन प्रकटीकरण :–

हमारे सत्कर्मो के परिणाम दीर्घकाल में भी प्रकट हो सकते हैं। इस प्रकार के प्रकटीकरण के दो प्रमुख तथ्य हैं। एक तो जब हमारे दुष्कर्मो के परिणाम अधिक मात्रा में प्रकट रहते हैं अर्थात् फल देने को उन्मुख रहते हैं तो हमारे सत्कर्मो के परिणाम को प्रकट नहीं होने देते हैं। जैसे शरीर में ज्यादा अस्वस्थता हो तो औषधि का प्रभाव शरीर पर शीघ्र दिखाई नहीं पड़ता है और वह बहुत समय पश्चात् शरीर पर प्रकट हुआ प्रतीत होता है। सत्कर्मो के परिणाम भी इन्हीं स्थितियों की तरह से हैं। जब हम एक लम्बे समय तक दुष्कर्मो का सम्पादन करते रहते हैं तो वह दुष्कर्म संचित हो जाते हैं। कुछ प्रेरणा के कारण या किसी अन्य कारण जब हम सत्कर्मो की ओर बढ़ते हैं तो वे दुष्कर्मो के परिणाम भी प्रकट रहते हैं जो शुभ कर्मो के परिणाम को दबाये रखते हैं। इसलिए शुभ कर्मो का जो परिणाम है वह पर्याप्त समय बाद प्रकट होता है। आरम्भ में प्रतिकूलता प्रतीत होती है और पश्चात् में अनुकूलता आने लगती है। इस प्रकार परमात्मा की कर्म व्यवस्था को अज्ञात कहा जाता है और हमारे शुभ कर्मो का जो परिणाम बहुत समय के उपरान्त हमें प्राप्त होता है उसको दीर्घकालीन प्रकटीकरण कहा जाता है।

(घ) पारलौकिक प्रकटीकरण :–

सत्कर्मो का पारलौकिक प्रकटीकरण होने पर हमें उच्च लोकों की प्राप्ति मृत्यु के उपरान्त होती है। कुछ लोक परलोक की व्यवस्था को स्वीकार नही करते हैं परन्तु हम मृत्यु के पश्चात् अप्रकट अव्यक्त हो जाते हैं तथा हम यह नहीं जानते हैं कि जो हमारे सम्बंधी अप्रकट हो चुके हैं अर्थात् मृत्यु को प्राप्त हो गए हैं वह कहॉ चले गए। हमें उनके बारे में कोई जानकारी नहीं हो पाती है। उनके बारे में कोई जानकारी प्राप्त न होना यह

स्पष्ट करता है कि परमात्मा की इस लोक के अतिरिक्त पारलौकिक व्यवस्था भी है। पारलौकिक व्यवस्था के सत्कर्मो का परिणाम हमें अवश्य प्राप्त होता है। हम जीवन में बहुत से सत्कर्म करते हैं उनके परिणाम संचित हुआ करते हैं। बहुत से सत्कर्मी मनुष्यों को आपने देखा होगा कि वे स्वर्ग प्राप्ति के लिए प्रयत्न किया करते हैं। स्वर्ग की प्राप्ति का जो यत्न है वे भी शुभ कर्म के परिणाम का एक स्वरूप है। परमात्मा की व्यवस्था इस लोक के साथ परलोक में भी रहती है। वह हमारे पुण्यों के फलस्वरूप हमें स्वर्गादिक लोकों में पुण्यों के क्षय होने तक रखती है। जब हमारे पुण्य क्षीण हो जाते हैं तो हमें पुनः इस पृथ्वी लोक पर आना पड़ता है। इस प्रकार हमारे अनेक कर्मो का परिणाम हमें पारलौकिक प्रकटीकरण के रूप में प्राप्त होता है।

(ङ) अग्रिम जन्मों में प्रकटीकरण :–

सत्कर्म जब संचित होते हैं तो वे अपना परिणाम अग्रिम जन्मों में भी देते हैं। किस शुभ कर्म का क्या परिणाम हमें इस जन्म में ही प्राप्त हो जाएगा अथवा उसके लिए हमें अगला जन्म लेना पड़ेगा यह सबका सब परमात्मा की व्यवस्था में चला करता है। हम परमात्मा को अपने किसी भी शुभ कर्म का फल प्रकट करने के लिए बाध्य नहीं कर सकते हैं। इसलिए जो सत्कर्म हम इस जन्म में करते हैं वे अग्रिम जन्मों में भी फलदायी होते हैं और वे फल के रूप में अग्रिम जन्मों में प्रकट होते हैं। बाल्यावस्था में अथवा युवावस्था आरम्भ होते ही किसी मनुष्य को विशिष्ट प्रकार की उपलिब्ध हो जाती हैं तो उसे पूर्व जन्मों के सत्कर्मो के परिणाम के प्रकटीकरण के रूप में स्पष्ट रूप से समझना चाहिए। मनुष्य की बाल्यावस्था में भी जो अनेक प्रकार की अनुकूलताऐं उसे सहजता से स्वतः ही प्राप्त हो जाती हैं, वे भी पूर्व जन्मों के शुभ कर्मो के परिणाम से ही प्राप्त होती हैं। अग्रिम जन्मों में जिस प्रकार के कर्मफल शुभ रूप में प्रकट होते हैं उनकी पृथक्–पृथक् स्थितियां हमें वस्तुतः प्रतीत होती हैं और उनका आभास भी करना चाहिए। अग्रिम जन्मों में पूर्व जन्मों के संचित कर्मो का प्रकटीकरण किस रूप में होता है? उस सम्बंध में कुछ भावों का आप अवलोकन कीजिए–

(एक) विशिष्ट विद्वता के रूप में :–आपने किसी किसी बालक को बाल्यावस्था में ही अनेक विधाओं का ज्ञाता होते देखा होगा। बिना प्रयास के ही वह विद्वान प्रतीत होता है और विशेष कर अध्यात्मिक विषयों में जब कोई बालक विशेष प्रकार की योग्यता रखता है अथवा अल्पकाल में ही विशिष्ट आध्यात्मिक विद्वान हो जाता है तो उसकी विद्वता को पूर्व जन्मों के शुभ कर्मो के रूप में प्रकट हुआ मान लेना चाहिए। अनेक बालकों में अत्यंत प्रखर बुद्धि होती है। वह माता पिता के कारण भी होती है, परन्तु विशेष कर वह पूर्व जन्मों के

शुभ कर्मो के कारण ही होती है। जब मनुष्य के पूर्व जन्मों के शुभ कर्म प्रकट होते हैं तो निश्चित ही उनके प्रभाव से मनुष्य में बाल्यावस्था में ही कुछ विशेष प्रकार की बुद्धि प्रकट हो जाती है और बुद्धि नितान्त छोटी अवस्था में देखने में मिलती है। इस प्रकार किसी बालक में यदि विशिष्ट विद्वता प्रतीत हो तो उसे पूर्व जन्मों के फल के रूप में ही मानना चाहिए।

(दो) अतिशय समृद्धि के रूप में :–

छोटी अवस्था में मनुष्य जब अतिशय समृद्धि प्राप्त कर लेता है तो इस प्रकार की समृद्धि निश्चित रूप से पूर्व जन्मों के सत्कर्मो के प्रभाव के कारण ही होती है जैसे कोई बालक अतीव समृद्धि परिवार में उत्पन्न हो जाता है और उसको जन्म के उपरान्त परिवार से विशेष प्रकार की समृद्धि प्राप्ति हो जाती है तो इसे भी पूर्व जन्मों के शुभ कर्मो का परिणाम मानना चाहिए। इसके अतिरिक्त किसी परिवार में जब कोई बालक उत्पन्न होता है तो वह परिवार उस बालक के उत्पन्न होने के पश्चात् विशेष समृद्धि प्राप्ति कर जाता है तो भी यह समृद्धि उस बालक के पूर्व जन्मों के शुभ कर्मो के परिणाम से आयी हुई मानना चाहिए। परन्तु इसके अन्य भी कारण हो सकते है। इस कारण मनुष्य में जब बाल्यावस्था से विशिष्ट प्रकार की समृद्धि प्रतीत हो तो उसे पूर्व जन्म के शुभ कर्मो के परिणाम के रूप में हमें अनुमान लगाना चाहिए।

(तीन) ऐश्वर्य के रूप में :–

बाल्यावस्था में पूर्व जन्मों के सत्कर्मो के परिणाम स्वरूप विशिष्ट प्रकार का ऐश्वर्य भी प्राप्त हो सकता है। मनुष्य के पूर्व जन्मों के शुभ कर्म दूसरे जन्म में बाल्यावस्था की स्थिति में अपने शुभ कर्मो के परिणाम को ऐश्वर्य के रूप में प्रकट कर देते हैं। छोटी अवस्था में ही बालक ऐसा कुछ विशेष कार्य कर डालता है जिससे उसकी ख्याति दूर दूर तक फैल जाती है। इस कारण मनुष्य की ख्याति जब छोटी अवस्था में किसी कारणवश दूर दूर तक फैल जाए तो इस प्रकार के ऐश्वर्य को पूर्व जन्मों के शुभ कर्मो का परिणाम ही मानना चाहिए। यद्यपि यह सब कुछ अदृश्य और अव्यक्त है परन्तु ऐश्वर्य के रूप में हम पूर्व जन्मों के शुभ कर्मो के परिणाम प्रकटीकरण ही मानते हैं।

(चार) छोटी अवस्था में उच्च पद :–

संसार में प्रत्येक पद प्राप्त करने की एक अवस्था होती है। जब कोई मनुष्य छोटी अवस्था में ही उच्च पद को प्राप्त हो जाए तो उसे भी पूर्व जन्मों के शुभ कर्मो का प्रभाव

माना जा सकता है। वैसे लगन और परिश्रम से भी मनुष्य छोटी अवस्था में उच्च पद को प्राप्त कर लेता है, परन्तु आपने यह देखा होगा कि जो सांसारिक पद मनुष्य को वृद्धावस्था या प्रौढ़ावस्था में प्राप्त होना चाहिए था वह पद युवावस्था के आरम्भ में भी प्राप्त हो जाता है तो इसे निश्चितरूपेण पूर्व जन्मों के शुभ कर्मो का परिणाम ही मानना चाहिए। इस प्रकार छोटी अवस्था में जो उच्च पद प्राप्त होता है वह पूर्व जन्मों के शुभ कर्मो के प्रकटीकरण का संकेत देता है।

(पांच) अन्य प्रकार की सामाजिक ख्याति :–

कला, साहित्य, खेल, विज्ञान, आदि क्षेत्रों में जो विशिष्ट ख्याति प्राप्त होती है वह इस जन्म के कृत कर्मो के कारण कम होती है। पूर्व जन्मों के सत्कर्मो के परिणाम के रूप में अधिक होती है। विशेषकर छोटी अवस्था में इस प्रकार की ख्याति प्राप्त होना सत्कर्मो का परिणाम माना जाता है। पूर्व जन्म के शुभ कर्मो के परिणाम प्रकट होने पर मनुष्य को छोटी आयु में ही विभिन्न क्षेत्रों में ख्याति उपलब्ध हो जाती है। इस प्रकार पूर्व जन्मों के शुभ कर्मो के फलस्वरूप मनुष्य को अनेक प्रकार की सामाजिक समृद्धि, प्रतिष्ठा, ख्याति, ऐश्वर्य आदि प्राप्ति होती है और इस प्रकार की स्थिति प्राप्त होने पर वह निश्चित रूप से पूर्व जन्मों के सत्कर्मो के परिणाम के स्वरूप में परिलक्षित होती है।

(16) दुष्कर्मो के विभिन्न स्वरूप :–

दुष्कर्मो के स्वरूपों को यद्यपि वर्गीकृत किया जा पाना असंभव है। दुष्कर्मो का प्रभाव मानव जीवन पर अत्यधिक रहता है। मनुष्य कामना, क्रोध, लोभ आदि के वशीभूत होकर नाना प्रकार के परिस्थितिजन्य दुष्कर्मो का सम्पादन करने लगता है। संसार के भोग तथा संसार की भोग वस्तुऐं मनुष्य को बड़ी लुभावनी प्रतीत होती है। इस कारण साधारणतया उनकी प्राप्ति हेतु मनुष्य दुष्कर्मो का सम्पादन करने लगता है। अन्य कारणों से भी दुष्कर्म होते हैं। परन्तु उनके मूल में अधिकतर सांसारिक सुख, ऐश्वर्य, ख्याति तथा भोग ही प्रधान रूप से होते हैं। इस कारण मनुष्य अधिकतर कामनाओं को वशीभूत होकर दुष्कर्म करता है। हम इस स्थल पर दुष्कर्मो के तीन प्रकारों को वर्णित करने का प्रयास कर रहे हैं।

(क) गंभीर दुष्कर्म :–

निम्न प्रकार के कार्य गंभीर दुष्कर्मो की श्रेणी में आते हैं। कर्म की स्थिति और उनके सम्पादन तथा प्रभाव को समझ कर हम गंभीर दुष्कर्मो का आंकलन कर लेते हैं। कुछ गंभीर दुष्कर्मो का विवरण निम्न प्रकार है।

(एक) मनुष्यों की हत्याऐं करना गंभीर दुष्कर्म है। महिला और बच्चों की हत्याऐं करना अतिशय गंभीर दुष्कर्म है। इन दुष्कर्मो का परिणाम बहुत ही कुत्सित होता है जिससे इस जन्म में उसे अनेक प्रतिकूलताओं का तो सामना करना ही पड़ता है। इस जन्म के उपरान्त उसको पारलौकिक जीवन में भी गंभीर यातनाऐं भुगतनी पड़ती है। वस्तुतः किसी को मृत्यु दंड देना परमात्मा का एक विशिष्ट कार्य है। यह अधिकार मनुष्य को किसी भी प्रकार प्राप्त नहीं है। हमें किसी भी दशा में किसी की हत्या करने का प्रयास नहीं करना चाहिए और न ही हत्या करनी चाहिए। हम जब ऐसा कुकृत्य करते हैं तो हम परमात्मा के अधिकार का प्रयोग करने का प्रयास तो करते ही और परमात्मा की व्यवस्था को खंडित करने का प्रयत्न भी करते हैं। इसलिए हत्या करना एक गंभीर दुष्कर्म है।

(दो) अपने निजी स्वार्थ के लिए किसी की हत्या करने का प्रयास करना उसे भयभीत करने का प्रयास करना मारना पीटना, उत्पीड़ित करना, एक गंभीर श्रेणी का दुष्कर्म है। हमें अपने निजी स्वार्थ के लिए अथवा किसी के स्वार्थ की सिद्धि हेतु किसी को मारने पीटने और उत्पीड़ित करने का अधिकार नहीं है। हम यदि ऐसा करते है तो गंभीर श्रेणी का दुष्कर्म करते हैं।

(तीन) अपने को बलशाली, सामर्थ्यवान प्रकट करने के लिए समाज में आतंक फैलाना, लोगों को अनावश्यक रूप से, डराना धमकाना, भय उत्पन्न करने का प्रयास करना तथा अव्यवस्था उत्पन्न करना भी एक गंभीर श्रेणी का दुष्कर्म है। आज के समाज में बहुत से मनुष्य अपने को बलशाली और सामर्थ्यवान प्रकट करने के लिए अनावश्यक रूप से समाज को आतंकित करने का प्रयास करते हैं।

(चार) किसी की व्यक्तिगत सम्पत्ति को, सार्वजनिक सम्पत्ति जलाना उसे नष्ट करने का प्रयास करना तथा अपने बल से समाज में अव्यवस्था एवं आतंक फैलाने का प्रयास करना भी एक गंभीर दुष्कर्म है।

(पांच) महिलाओं से व्यभिचार करना, उन्हें दुष्कर्म के लिए प्रेरित करना तथा बाध्य करना भी गंभीर दुष्कर्म है। इस प्रकार का प्रयास मनुष्यों को कदापि नहीं करना चाहिए।

(छः) समाज के लोगों के मध्य विभेद उत्पन्न करना तथा विभेद उत्पन्न करके हिंसा फैलाना इस प्रकार के कृत्य में सम्मिलित होना अथवा अन्य लोगों को भी इसके लिए प्रेरित करना गंभीर दुष्कर्म है।

(सात) किसी की हत्या के लिए प्रेरित करना, हत्या करने का प्रयास करना अथवा हत्या में सहयोग करना भी एक गंभीर प्रकार का दुष्कर्म है।

(आठ) समाज में अश्लीलता उत्पन्न करना, ऐसे कृत्य करना जिससे समाज में अश्लीलता फैले और सामाजिक जीवन में नैतिक मूल्यों का ह्रास हो तथा सामाजिक जीवन अैनिकतापूर्ण वातावरण में परिवर्तित हो जाए भी एक प्रकार का गंभीर दुष्कर्म है।

(नौ) दूसरों की सम्पत्ति पर कब्जा करना, उसे किसी प्रकार दूसरों के हाथों बेचना अवैधानिक रूप से उसका हस्तान्तरण करना भी एक गंभीर दुष्कर्म है।

(दस) समाज को गलत और भ्रमपूर्ण मार्ग पर चलने की शिक्षा देना उसके लिए लोगों को प्रेरित करना और ऐसा आचरण करना जिससे समाज के लोग भ्रमित हो। इस प्रकार का आचरण भी एक गंभीर दुष्कर्म है।

(ग्यारह) माता पिता, गुरू, आचार्य, पूज्यजनों को प्रताड़ित करना, मारना, पीटना, अपशब्दों का प्रयोग करना भी गंभीर दुष्कर्म की श्रेणी में आता है।

(बारह) अपने से आयु में वृद्ध, शिक्षा,आश्रम, वर्ण, पद में श्रेष्ठ व्यक्ति को अपमानित करना और उसे मारना पीटना भी गंभीर दुष्कर्म की श्रेणी में आता है।

(तेरह) मंदिर तथा देवालयों में प्रतिष्ठित प्रतिमाओं के समक्ष कलह, लड़ाई झगड़ा करना, उन्हें वहां से हटाने का प्रयास करना तथा भगवान और देवी देवताओं के लिए अपशब्दों का प्रयोग करना भी गंभीर दुष्कर्म की श्रेणी में आता है।

(चौदह) नशेयुक्त पदार्थो का सेवन करना,ऐसे पदार्थो की बिक्री करवाना तथा उनके प्रचलन का प्रयास करना जिससे समाज में नशीले पदार्थो के सेवन की भावना बढ़े भी दुष्कर्मो की श्रेणी में आता है।

(ख) सामान्य दुष्कर्म :–जो दुष्कर्म गंभीर दुष्कर्मो की श्रेणी में नहीं आते हैं वह सामान्य दुष्कर्म कहे जाते हैं। उनके सम्पादन से भी हमें अनेक प्रकार के प्रतिकूल परिणाम प्राप्त हो जाते हैं। कुछ सामान्य दुष्कर्मो का विवरण निम्न प्रकार है–

(एक) किसी को गाली देना, किसी व्यक्ति के लिए अनावश्यक शब्दों का प्रयोग करना अथवा सामूहिक रूप से उसका उपहास करना आदि सामान्य दुष्कर्म है।

(दो) किसी जीव को सताने का प्रयास करना, उसे बंधक बनाकर उत्पीड़ित करना, मारना पीटना और उचित रूप से भोजन की व्यवस्था न करना भी एक सामान्य दुष्कर्म है जो उपरान्त में गंभीर दुष्कर्म हो जाता है।

(तीन) परिवार के सदस्यों के साथ सम्बंधी जनों के साथ और सम्पर्कित व्यक्तियों के साथ उचित व्यवहार न करना तथा परिवार,सम्बंधी और सम्पर्कित लोगों के बीच कलह उत्पन्न कर देना भी एक सामान्य श्रेणी का दुष्कर्म है। जब इस प्रकार के दुष्कर्म तीव्रता से किये जाते हैं तो वे गंभीर दुष्कर्मो की श्रेणी में आ जाते हैं।

(चार) अपने अधीनस्थ सेवकों तथा सहयोगियों से उचित व्यवहार न करके अनुचित व्यवहार करना ओर अप्रिय शब्दों का प्रयोग करना भी सामान्य दुष्कर्म की श्रेणी में आता है।

(पांच) किसी अन्य को किसी भी प्रकार से हानि पहुंचाने की चेष्टा करना भी सामान्य दुष्कर्म की श्रेणी में आता है और जब यह हानि पहुंचाने की मात्रा प्रबल हो जाती है तब यह गंभीर दुष्कर्म का स्वरूप ले लेती है।

(छः) किसी भी मनुष्य के विरूद्ध षड़यंत्र करना और उसके पतन का प्रयास करना, उसके व्यवसाय को हानि पहुंचाना भी एक सामान्य श्रेणी का दुष्कर्म है।

(सात) किसी भी निर्दोष को दोषी ठहराने का प्रयास करना तथा निर्दोष होते हुए भी दोषपूर्ण रूप में प्रकट करने का प्रयास करना।

(आठ) असामाजिक, अनैतिक, अवैधानिक कृत्यों का सम्पादन करना, तथा इस प्रकार के कृत्यों के सम्पादन में सहयोग करना भी सामान्य श्रेणी का दुष्कर्म है।

(नौ) अपने माता पिता, गुरू, अपने से श्रेष्ठजनों के आदेशों की अवहेलना करना तथा अपने से श्रेष्ठ पुरूषों के आचरण के विरूद्ध आचरण करना।

(दस) अपने से श्रेष्ठ आयु में बडे तथा पद,प्रतिष्ठा,ऐश्वर्य आदि में श्रेष्ठ व्यक्तियों का सम्मान न करना उनको प्रणाम न करना और उनका उपहास करना भी सामान्य दुष्कर्म की श्रेणी में आता है। सामान्य प्रकार से जो दुष्कर्म है वे मात्रा में अधिक हो जाने पर गंभीर दुष्कर्म हो जाते हैं। जब एक दुष्कर्म कम हानि की संभावना से किया जाता है तो उससे यदि व्यापक धन जन हानि होती है तो वही सामान्य दुष्कर्म गंभीर दुष्कर्म में परिवर्तित हो जाता है। इस प्रकार एक सामान्य दुष्कर्म मात्रा, परिस्थिति, प्रभाव के कारण गंभीर दुष्कर्म में परिवर्तित हो जाता है।

(ग) आध्यात्मिक दुष्कर्म :–

चूंकि भारत एक श्रद्धावान राष्ट्र है यह सृष्टि के आदिकाल से बहुत प्राचीन समय से श्रद्धा से युक्त रहा है। इस देश में परमात्मा, देवी देवताओं, श्रेष्ठ पुरूषों तथा तत्त्वदर्शी

महापुरूषों की सदैव पूजा उपासना और सेवा होती रही है जो अब भी हो रही है। पवित्र नदियों में स्नान, अनेक प्रकार के देवी देवताओं के मंदिरों में जाना, तीर्थ स्थलों का भ्रमण करना आदि आदि श्रद्धा और आस्था के प्रतीक हैं। भारतवर्ष की श्रद्धा और आस्था की नींव बहुत मजबूत है जो अब तक स्थापित है और सृष्टि के अंत तक स्थापित रहेगी। आध्यात्मिक जगत में भी वर्तमान में अनेक प्रकार के दुष्कर्मो का प्रचलन हो गया है। इसलिए इस ओर भी कुछ संकेत करना आवश्यक है। इस स्थल पर कुछ आध्यात्मिक दुष्कर्मो का उल्लेख किया जा रहा है जिन्हें पढ़कर अध्यात्मिक दुष्कर्मो की श्रेणी को आप समझ सकते हैं।

(एक) अपने को ईश्वर घोषित करना तथा ईश्वर की तरह पूजा करवाना और ईश्वर की तरह से ही अपने भक्तों से व्यवहार करना तथा ईश्वर के प्रभाव की तरह से ही अपने को प्रकट करने का प्रयास करना आध्यात्मिक दुष्कर्म है।

(दो) अपने को अवतारी पुरूष के रूप में बताना और अवतारी पुरूष के रूप में दर्शाने का प्रयास करना तथा ऐसा कहना कि युग युग में परमात्मा का अवतरण होता है उसी के रूप में मेरा प्रकटीकरण हुआ है। अथवा अमुक गुरू का प्रकटीकरण हुआ है। इस प्रकार का कृत्यु आध्यात्मिक दुष्कर्म की श्रेणी में आता है।

(तीन) किसी भी मनुष्य का सृष्टि के निर्माण पुरूष के रूप में अपने को सम्मिलित करना और स्वयं को सृष्टिकर्ता की तरह मानना तथा अपने श्रद्धालु भक्तों द्वारा ऐसा ही प्रचार प्रसार करवाना भी आध्यात्मिक दुष्कर्म है।

(चार) देवताओं की भांति व्यवहार करना, अपने को देव तुल्य समझना व अपने श्रद्धालुओं को अपनी प्रतिमा, फोटो आदि बनाकर उसको पुजवाने का प्रयास करना भी एक आध्यात्मिक दुष्कर्म है। (पांच) शास्त्रों की त्रुटिपूर्ण व्याख्या करना, मनमाने ढंग से शास्त्रों के विषय को प्रतिपादित करना तथा शास्त्रों के सिद्धान्तों को विखंडित करने का प्रयास करना जिससे शास्त्रों की मूल भावना ही विकृत हो जाए। ऐसा करना भी अध्यात्मिक दुष्कर्म की श्रेणी में आता है।

(छः) अपने को पूर्ववर्ती महापुरूषों का स्वरूप बताना तथा पूर्वजन्म में हम अमुक अमुक महापुरूष थे ऐसा कहना भी एक प्रकार का आध्यात्मिक दुष्कर्म है।

(सात) अपने को भविष्यवक्ता के रूप में घोषित करना तथा अन्य लोगों के भविष्य के सम्बंध में भविष्यवाणी करना भी एक आध्यात्मिक दुष्कर्म है।

(आठ) श्रद्धावान पुरूषों, महिलाओं को पाखंड तंत्र मंत्र के आधार पर ठगने का प्रयास करना तथा अनेक प्रकार के तांत्रिक साधनाओं का अनुष्ठान करना।

(नौ) धार्मिक कार्यो हेतु संचित धन को स्वयं के उपभोग में अथवा निजी कार्यो में खर्च करना और उससे विलासितापूर्ण जीवन जीने का प्रयास करना भी एक प्रकार का आध्यात्मिक दुष्कर्म है।

(दस) मंदिरों, देवालयों तथा उससे संलग्न सम्पत्ति को अपने निजी कार्यो में उपभोग करना तथा उसे अपनी सम्पत्ति बताना।

(ग्यारह) परमात्मा, महापुरूषों, देवी देवताओं की आलोचना करना, उनके कृत्यों का उपहास करना और उन पर कटुवचनों का कहना भी एक आध्यात्मिक दुष्कर्म है।

(बारह) गुरू मंत्र, अनावश्यक रूप से दीक्षा लेने को प्रेरित करना, इच्छा न होने पर भी जबरदस्ती किसी को गुरू मंत्र देना।

(तेरह) धर्मशास्त्रों में उल्लिखित तथ्यों को तोड़ मरोड़ कर प्रस्तुत करना। उनकी भ्रामक और मिथ्या व्याख्या करना जिससे श्रोतागण भ्रमित हो जाए।

(चौदह) किसी के संकट निवारण के लिए यज्ञ, पूजा, के बहाने धन, को ऐठने का प्रयास करना तथा संकट निवारण के नाम पर यज्ञादिक कर्मो का पाखंडपूर्वक सम्पादन करना।

(पंद्रह) यज्ञ के अनुष्ठान की विधि को न जानकर भी अनेक प्रकार के यज्ञों का अनुष्ठान करते रहना।

(सोलह) यजमान से दक्षिणा के नाम पर धन, वस्तु, पदार्थ, आदि मांगना तथा उन्हें देने के लिए बाध्य करना। (सत्रह) किसी मंदिर, पूजा स्थल में भगवान की मूर्ति के सामने बैठकर अवैधानिक संकल्प करना, शपथ लेना आदि आदि भी आध्यात्मिक दुष्कर्म है।

(अठारह) भगवान के विग्रह के सामने शास्त्रों में उल्लिखित आचरण और नियमों का पालन न करना तथा जानबूझकर उनकी अवहेलना करना भी एक आध्यात्मिक दुष्कर्म है।

(17) सत्कर्मो के विभिन्न स्वरूप :–

मनुष्य दुष्कर्मो की तरह ही सत्कर्मो का आचरण करता है। सत्कर्मो के आचरण के भी कई आधारभूत कारण होते हैं। सत्कर्मो को भी निश्चित प्रकार से वर्गीकृत किया जा पाना असंभव है। सत्कर्मो का आचरण मनुष्य तभी कर पाता है जब उसमें सात्त्विक गुणों

की वृद्धि हो जाती है और सात्त्विक गुणों की वृद्धि के कारण सात्त्विक गुणों की प्रेरणा से मनुष्य अनेक प्रकार के शुभ कर्मो का आचरण करता है। उसकी प्रकृति भी शुभ कर्मो के आचरण में सहायक होती है। विशेषकर शुभकर्मो की ओर जब मनुष्य उन्मुख होता है तो उसमें सात्त्विक गुण प्रधानता से कार्य करता है। सत्कर्मो के तीन प्रकारों को इस स्थल पर हम उल्लिखित करने का प्रयास कर रहे हैं।

(क) उत्कृष्ट श्रेणी के सत्कर्म :–

उत्कृष्ट श्रेणी अर्थात् श्रेष्ठ सत्कर्मो के कुछ निम्न प्रकार हैं।

(एक) परमात्मा की पूजा उपासना, स्मरण चिंतन करना और उसके निकट रहने का प्रयास करना उत्कृष्ट श्रेणी का सत्कार्य है।

(दो) परमात्मा के आश्रय में चले जाना, उसका सहारा ले लेना, परमात्मा को अपने समस्त कर्मो का अर्पण कर देना भी उत्कृष्ट श्रेणी का सत्कर्म है।

(तीन) माता, पिता, गुरू, श्रेष्ठजनो, संत महात्माओं की सेवा करना और उनकी आज्ञा का पालन का करना भी उत्कृष्ट श्रेणी का सत्कर्म है।

(चार) अपने परिवार समाज के अन्य लोगों को नैतिक शिक्षा देना और उन्हें सत्कर्मो की ओर प्रेरित करना उत्कृष्ट श्रेणी का जीवन जीने के लिए प्रयास करना भी जिससे समाज में नैतिक मूल्यों की वृद्धि हो जाती है।

(पांच) देवी देवताओं की निष्कामभाव से उपासना करना, यज्ञादिक शुभकर्मो का आचरण करना भी उत्कृष्ट श्रेणी का शुभकर्म है। **(छः)** गरीबों, असहायों, निर्धन, निर्बल वर्ग के लोगों की भोजन, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा आदि की सहायता करना तथा उनके जीवन के संचालन हेतु उचित व्यवस्था करना भी उत्कृष्ट श्रेणी का सत्कर्म है।

(सात) समाज में शिक्षा के प्रचार प्रसार हेतु कर्म करना तथा अशिक्षित लोगों को शिक्षित बनाने का प्रयास करना भी उत्कृष्ट श्रेणी का सत्कर्म है।

(आठ) आध्यात्मिक कार्यक्रमों, सत्संगों आदि का आयोजन करना और करवाना उत्कृष्ट श्रेणी का सत्कर्म है।

(नौ) आध्यात्मिक पुस्तकों के प्रकाशन और उनके प्रचार प्रसार में सहयोग करना तथा उनको पात्रों तक पहुंचाना भी उत्कृष्ट श्रेणी का सत्कर्म है, क्योंकि इससे नैतिक मूल्यों की वृद्धि होती है।

(ख) मध्यम श्रेणी के सत्कर्म :–

मध्यम श्रेणी के कुछ सत्कर्म निम्न प्रकार हैं जिनको समझ कर हम उनकी श्रेणी का निर्धारण करते हैं।

(एक) फलेच्छा को ध्यान में रखकर, परिणाम को दृष्टिगत रखकर परमात्मा, देवी देवताओं की पूजा उपासना करना मध्यम श्रेणी का सत्कर्म है।

(दो) फलेच्छा को दृष्टिगत रखकर दान देना, यज्ञादिक कर्मो का आयोजन कराना, भी मध्यम श्रेणी का सत्कर्म है।

(तीन) मंदिर, देवालय, धर्मशाला, विद्यालय, चिकित्सालय का निर्माण करना तथा उससे यश, कीर्ति, ऐश्वर्य की इच्छा रखना मध्यम श्रेणी का सत्कर्म है।

(चार) माता पिता की सेवा, धन सम्पत्ति आदि की इच्छा को दृष्टि में रखकर करना मध्यम श्रेणी का सत्कर्म है।

(पांच) अपने परिवार की, समाज की सेवा सकाम भाव से करना मध्यम श्रेणी का सत्कर्म है।

(छः) सकाम भाव से देवी देवताओं की उपासना पूजा करना यज्ञादिक शुभ कर्मो का आचरण करना भी मध्यम श्रेणी का सत्कर्म है।

(सात) गरीब असहायों, निर्बल और निर्धन वर्ग के लोगों की सेवा सहायता करना और उसके बदले में यश, कीर्ति, ख्याति की चाहना करना मध्यम श्रेणी का सत्कर्म है।

(आठ) शिक्षा की व्यवस्था करके उसको व्यवसायिक रूप देना और उससे धन कमाने का अतिशय प्रयास करना मध्यम श्रेणी का सत्कर्म है।

(नौ) आध्यात्मिक कार्यक्रमों का आयोजन अपने नाम की दृष्टि से करना मध्यम श्रेणी का सत्कर्म है।

(ग) निम्न श्रेणी का सत्कर्म :–

निम्न श्रेणी के सत्कर्मो का उल्लेख भी इस स्थल पर प्रसंग वश किया जा रहा है–

(एक) किसी भी व्यक्ति की सहायता प्रतिकार की भावना से, फल की इच्छा रखकर कि भविष्य में इससे भी हमें कुछ सहायता प्राप्त होगी। निम्न श्रेणी का सत्कर्म है।

(दो) धन के बदले शिक्षा दान करना अर्थात् शिक्षा देने की व्यवस्था में धन को प्रधानरूप से सम्मिलित करना भी निम्न श्रेणी का सत्कर्म है।

(तीन) यज्ञादिक कर्मो से धन कमाना उसके अनुष्ठान के पूर्व अपना पारिश्रमिक तय करना भी निम्न श्रेणी का सत्कर्म है।

(चार) निर्धन, गरीब, असहायों की सहायता हेतु दान लेकर सहायता भी करना तथा उसे अपने कार्यो के उपयोग में लाना।

(पांच) अपने लाभ की आशा से अनेक प्रकार के बेरोजगारों को रोजगार उपलब्ध कराने का प्रयास करना निम्नश्रेणी का सत्कर्म है।

(छः) परिवारिक लोगों की सहायता करने के पीछे अपने व्यक्तिगत स्वार्थ को खोजने का प्रयास करना।

(सात) आध्यात्मिक कार्यक्रमों, सत्संगों आदि में उपेक्षा भाव से ऐसे कार्यक्रमों को भार समझ कर सम्मिलित होना और उसमें सहायता करना भी निम्न श्रेणी का सत्कर्म है।

(आठ) मंदिरों, देवालयों, धर्मशालाओं, विद्यालयों, अस्पतालों का निर्माण करके उससे अपने स्वार्थ की पूर्ति करना।

(नौ) माता पिता की सेवा उपेक्षा भाव से भार समझकर करना भी निम्नश्रेणी का सत्कर्म है।

(दस) गुरूजनों, आचार्यो, महापुरूषों आदि की आज्ञा का पालन करना और विवशतापूर्वक उनका सत्कार आदि करना भी निम्न श्रेणी का सत्कर्म है।

(18) कर्म विषयक ज्ञान मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है :–

कर्म की गति गहन है। यह शास्त्र का आदर्श वाक्य है। इस कारण कर्म के विषय में ज्ञान प्राप्त करना मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है। बाल्यावस्था से जो ज्ञान प्रदान करने की व्यवस्था है वह इस कारण है कि मनुष्य बाल्यावस्था में ही कर्म के विषय में समुचित ज्ञान प्राप्त कर लें तथा युवावस्था आते आते वह कर्म के विषय को और कर्म के सैद्धान्तिक सम्पादन के स्वरूप को समझ ले और उस सम्बंध में अभी से ज्ञान प्राप्त कर लें तत्पश्चात् कर्म का आचरण करे तथा विकर्म का परित्याग करे। शास्त्रसम्मत कर्म को ही कर्म की संज्ञा दी जाती है और जो अत्यंत दूषित तथा त्याज्य कर्म है उनको शास्त्रों में विकर्म कहा जाता है। यही अल्प परिभाषा है। हमारे भारत वर्ष में गुरूकुल अथवा आश्रम की जो प्राचीन व्यवस्था थी वह इसी कारण थी कि मनुष्य गुरूकुल अर्थात गुरू के घर में रहकर कर्म के स्वरूप को समझ ले। कर्म के स्वरूप को समझना मनुष्य का प्रथम कर्तव्य है जो पालन करना चाहिए। कर्म के सम्बंध में कुछ विशेष तथ्यों का वर्णन प्रस्तुत किया जा रहा है कृपया अवलोकन करने की कृपा करें।

(19) कर्म सम्पादन के 13 करण :–

जिस साधन से कर्मो का सम्पादन होता है उन्हें करण कहा जाता है। करण के सम्बंध में अनेक प्रकरणों में कई स्थलों पर चर्चा हुई है। यहां पर करण के सम्बंध में कुछ विस्तार से चर्चा प्रस्तुत की जा रही है ताकि कर्म के सम्पादन के साधन को स्पष्ट रूप से समझने में सहायता मिले। शरीर में दो प्रकार के 13 करण हैं। दो प्रकार के जो करण हैं उन्हें 1– बाह्यकरण 2– अंतःकरण कहा जाता है।

बाह्यकरण दस हैं, जो दो भागों में विभक्त हैं, जिन्हें ज्ञानेन्द्रियां और कर्मेन्द्रियां कहा जाता है। इसी प्रकार ज्ञानेन्द्रियां पांच हैं जिन्हें कान, नेत्र, जिह्वा, त्वचा तथ नासिका कहा जाता है। कर्मेन्द्रियां भी पांच हैं जिन्हें वाक्, हस्त, पाद, उपस्थ और पायु कहा जाता है। अंतकरण के तीन भेद हैं जिन्हें मन, बुद्धि और अहंकार कहते हैं। इस प्रकार मानव शरीर में तेरह करण हैं जिनके माध्यम से मनुष्य कर्म करता है। ज्ञानेन्द्रियां कान, नेत्र, जिह्वा, त्वचा और नासिका के पांच विषय हैं, जिन्हें शब्द, रूप, रस, स्पर्श, और गंध कहा जाता है।

कर्ण अर्थात् कान से सुनने का कार्य होता है। नेत्र से देखने का कार्य करते हैं। जिह्वा विभिन्न प्रकार का स्वाद लेती है। त्वचा से स्पर्श रूपी कार्य होता है। नासिका गंध लेने का कार्य करती है। वाणी से बोलने का कार्य होता है। हाथों से विभिन्न प्रकार के सांसारिक कर्म होते हैं और पैरों से हम चलने का कार्य लेते हैं और उपस्थ तथा पायु से जन्म तथा मल मूत्र विसर्जन का कार्य होता है। इस प्रकार प्रत्येक बाह्यकरण अपने अपने कर्मो का सम्पादन करता है। ज्ञानेन्द्रियों की तरह से ही कर्मेन्द्रियों के भी पांच विषय हैं जिन्हें शब्द, रूप, रस, स्पर्श और गंध कहा जाता है।

अंतःकरण के तीन तत्त्व है जिन्हें मन, बुद्धि और अहंकार कहते हैं। मन से मनुष्य नाना प्रकार के संकल्प करता है। बुद्धि की वृत्ति अर्थात् कार्य विकल्प है जो समस्त संकल्पों का विनिश्चय करती है। अहंकार से मैं तथा मेरेपन का आभास होता है। इस प्रकार तीनों अंतःकरण के तत्त्व अपनी अपनी वृत्तियों में लगे रहते हैं। मन बुद्धि और अहंकार की क्रिया विधि के सम्बंध में **मुक्ति का सहज उपाय** नामक पुस्तक में विस्तार से वर्णन किया गया है। मन बुद्धि और अहंकार के विषय में विस्तृत जानकारी के लिए उक्त पुस्तक का अध्ययन करना चाहिए।

मनुष्य उपरोक्त 13 करणों के माध्यम से कर्मो का सम्पादन करता है। मन तथा बुद्धि करण में विशेष में मानी जाती है। मन को सभी इन्द्रियों का स्वामी कहा जाता है। इन्द्रियां मन के आश्रय से ही कार्य करती हैं। इन्द्रियों की मन तथा बुद्धि के साथ

सामजंस्यता रहती है। जैसे हम किसी वस्तु को देखते हैं तो आंख देखने का कार्य करती है परन्तु इस देखने के कार्य में मन का सहयोग रहता है। मन उस वस्तु के निकट जाना चाहता हैं और जाता है इस क्रिया में बुद्धि भी उस दृश्य का विनिश्चय करती है। यदि हम उस देखी गयी वस्तु के पास जाना चाहते हैं तो यह विचार पहले मन में आता है और मन इस विचार को बुद्धि के पास प्रेषित करती है तत्पश्चात् बुद्धि उस विचार का विनिश्चय करके पैरों को चलने का आदेश देती है। बुद्धि द्वारा आदेश प्राप्त होने पर पैर चलने का कार्य करते हैं। इस प्रकार प्रत्येक कार्य में कर्मेन्द्रियों, ज्ञानेन्द्रियों मन तथा बुद्धि का पारस्परिक तालमेल रहता है। बुद्धि मन से श्रेष्ठ है क्योंकि वह कार्य का विनिश्चय करती है और मन के द्वारा संकल्पित विषयों पर ध्यान रखती है।

मन तथा बुद्धि इस मानव शरीर में परमात्मा द्वारा प्रदान की गई दो विशिष्ट शक्तियां हैं जो अदृश्य, अव्यक्त, अप्रत्यक्ष रहकर व्यक्त और प्रत्यक्ष की तरह से समस्त कार्यो का सम्पादन करती है। इस मानव शरीर की सम्पूर्ण कार्य प्रणाली ही मन तथा बुद्धि के आधार पर सम्पादित होती है। मन बहुत प्रमथनशील और चंचल कहा जाता है वह निरन्तर बिना विश्राम के कार्य करता हैं। मन विचार करता है और बुद्धि उस मन के द्वारा विचारे गए विषय को देखती है और अपनी सहमति तथा असहमति व्यक्त करती है। जैसे मन यह विचारता है कि हमें अमुक अमुक कार्य करना है तथा अमुक अमुक स्थान पर जाना है तो मन के द्वारा विचारे गए अमुक अमुक कार्य को बुद्धि विचारती है तथा उस पर अपनी सहमति देती है। सहमति जिस कार्य की प्राप्ति होती है उस कार्य का सम्पादन होता है और यदि बुद्धि ने यह कहा कि अमुक कार्य नहीं करना है तो वह कार्य सम्पादित नहीं किया जाएगा।

बुद्धि अमुक कार्य न करने का कारण भी प्रस्तुत करती है। उसी प्रकार यदि मन यह विचार करता है कि अमुक स्थान पर जाना है तो बुद्धि मन के द्वारा विचारित विषय को जानती है और यह तय करती है कि अमुक स्थान पर जाना है अथवा नहीं जाना है। उस स्थान पर जाना उचित होगा अथवा उचित नहीं होगा यह विचार चलता है। बुद्धि इस विषय पर मंथन करती है और यदि बुद्धि यह उचित समझती है कि उस स्थान पर जाना ठीक है तो उस स्थान पर जाने की सहमति दे देती है और यदि वह उचित नहीं समझती है तो उस स्थान पर न जाने का निर्णय कर लेती है। इस प्रकार जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में प्रतिक्षण जो भी कार्य किये जाते हैं वे सबके सब मन द्वारा संकल्पित और बुद्धि के द्वारा विनिश्चत होते हैं।

प्रत्येक मनुष्य को इन्द्रियों तथा मन और बुद्धि की कार्य प्रणाली पर ध्यान देना चाहिए। इन्द्रियां किस प्रकार किसके आदेश पर कार्य करती है? वे किस प्रकार कार्य करती है ? इस तथ्य पर ध्यान देना अनिवार्य है। इस विषय पर अर्थात् इन्द्रियों मन तथा बुद्धि की कार्य प्रणाली पर ध्यान देने की आवश्यकता इस कारण से है क्योंकि सम्पूर्ण प्रकार के कर्म चाहें वह अवैधानिक कर्म हो और चाहें वह शुभ कर्मो के रूप में वैधानिक कर्म हो इन्हीं के द्वारा सम्पादित किये जाते हैं। हम जब इन्द्रियों, मन तथा बुद्धि की कार्य पद्धति को समझते हैं तो यह जान लेते हैं कि दुष्कर्मो का आचरण मनुष्य क्यों करता है? तथा शुभ कर्मो का आचरण मनुष्य क्यों करता है उसमें किसी प्रेरणा रहती है। जब तक हम उक्त सभी की क्रिया पद्धति को नहीं जानेंगे तब तक उस कर्म के व्यवहारिक स्वरूप को भी नहीं समझ पायेंगे। इस कारण विचारशील और अपने कल्याण की आकांक्षा वाले पुरूष को इन उपर्युक्त 13 करणों को और उनकी कार्य विधि को अवश्य ही समझने का प्रयास करना चाहिए। ताकि अवैधानिक कर्मो से मुक्ति प्राप्त हो और वैधानिक कर्मो का सम्पादन हो सकें।

शुभ कर्मो का आचरण तथा दुष्कर्मो का आचरण इन्हीं करणों के माध्यम से होता है। यह तेरह करण ही मनुष्य के प्रत्येक कार्य के आधार हैं। जैसे हम इन हाथों से किसी असहाय को सहारा दे सकते हैं उसका सहयोग कर सकते हैं और इन्हीं हाथों से हम किसी को मारते पीटते भी हैं। सहायता और सहयोग करना शुभ कर्म माना जाता है तथा मारना और पीटना दुष्कर्म की श्रेणी में आता है। हाथ नामक करण दोनों ही प्रकार के कार्य करता है। इसी प्रकार हमारी वाणी अर्थात् वाक्रूपी इन्द्रिय किसी की प्रशंसा कर सकती है और मृदु अर्थात् मीठा बोलकर किसी को अपने बस में कर सकती है। इसके प्रतिकूल वह किसी को किसी प्रकार का अपशब्द कह सकती है। प्रशंसा करना,मृदुभाषिता आदि कर्म शुभकर्मो की श्रेणी में आते हैं। वैसे ही किसी को अपशब्द कहना और अनावश्यक वाक्यों से प्रताड़ित करना दुष्कर्मो की श्रेणी में आते हैं। इस प्रकार एक ही करण अर्थात् वाणी से दोनों प्रकार के कार्य हो सकते हैं। हमें प्रत्येक इन्द्रिय के सम्बंध में अनुकूल और प्रतिकूल क्रियाओं के सम्पादन के बारे में विस्तार से विचार करना चाहिए और हमारे समस्त करण लोगों के हितार्थ कर्मो की ओर उन्मुख हो और उन क्रियाओं का परित्याग करें जिनसे किसी का अहित होता हो अथवा कोई प्रताड़ित हो रहा हो।

अहंकार अंतःकरण का एक विशिष्ट अंग है। यह भी अनेक प्रकार से कर्मो का सम्पादन करता है। अहंकार के प्रभाव से ही मनुष्य अनेक प्रकार के निकृष्ट कर्म करने को उद्वत होता है। अहंकार की क्रियाविधि को भी उक्त पुस्तक में विस्तार से वर्णित किया गया

है। यहां पर प्रसंगवश अहंकार की क्रियाविधि को संक्षिप्त रूप में आपके समझने हेतु प्रस्तुत किया जा रहा है। अहंकार हमें मैं और मेरेपन का आभास कराता है। वस्तुतः इस जगत में हमारी न तो कोई सत्ता है और न ही हमारे स्वामित्व में कोई वस्तु ही है। यह मानव शरीर जो हमें प्राप्त हुआ है वह भी हमारा नहीं है क्योंकि वह समय के साथ समाप्त हो जाता है। इसलिए जो भी वस्तु व व्यक्ति हमारे सम्पर्क में है वे वास्तविक रूप से नहीं है। हम इस संसार में जो भी हैं वह वास्तविक रूप से नहीं हैं। हम कुछ अन्य ही है। हमारी जो सांसारिक स्थिति है उसका मिथ्याभास हमको अहंकार के कारण ही रहता है। यह अहंकार रूपी तत्त्व बुद्धि से भी सूक्ष्म और प्रबल है, इसलिए इसे साधारण रूप में जाना जा पाना और इसके प्रभाव से बच पाना असंभव ही है।

मनुष्य में नाना प्रकार के अहंकार रहते हैं। जैसे शारीरिक बल का अहंकार, धन का अहंकार, पद का अहंकार, ऐश्वर्य का अहंकार, प्रतिष्ठा का अहंकार, ज्ञान का अहंकार, सौन्दर्य का अहंकार, शक्ति का अहंकार आदि आदि। प्रत्येक प्रकार के अहंकार के वशीभूत होकर हम नाना प्रकार के दुष्कर्मो का सम्पादन करते रहते हैं। इस कारण अहंकार नामक करण हमें नाना प्रकार के दुष्कर्मो को करने हेतु प्रेरित करता है तथा शरीर इन्द्रियों, मन, बुद्धि आदि सभी पर इस अहंकार का प्रभाव रहता है। अहंकार के प्रभाव को सामान्य रूप से जाना जा पाना असंभव है। जब मनुष्य साधना के पथ पर आगे बढ़ता है और साधना शिखर की ओर जाती है तो अहंकार का प्रभाव हमें प्रतीत होता है। उस प्रतीत हुए अहंकार को बुद्धि के द्वारा हम संयमित कर सकते है। यद्यपि अहंकार बुद्धि से तीव्र और प्रबल है परन्तु बुद्धि अहंकार पर निरन्तर करने में सक्षम है। इसी बुद्धि को उत्कृष्ट बुद्धि कहा जाता है।

मनुष्य को सुख दुख का, मान अपमान का, प्रशंसा बडाई का, लाभ हानि आदि का जो बोध होता है वह अहंकार के कारण ही होता है। अर्थात् उक्त सभी अहंकार के धर्म ही माने जाते हैं। जब मनुष्य अहंकार से निवृत्त हो जाता है तो वह सुख दुख आदि द्वंद्वों तथा मान अपमान से परे और विगत हो जाता है। यही अहंकार से निवृत्ति की विशिष्ट परख है और जब तक मनुष्य अहंकार से निवृत्त नहीं होता तब तक सुख दुख, मान अपमान, लाभ हानि में प्रसन्नता और शोक का आभास करता है तथा सुखी और दुःखी हुआ करता है। इसलिए यह अहंकाररूपी तत्त्व बहुत ही प्रबल है। जिसका विनाश सामान्य रूप से संभव नहीं है। यह अहंकाररूपी तत्त्व करण के रूप में मानव शरीर में व्याप्त रहता है और इसका प्रभाव मानव शरीर पर इन्द्रियों और मन बुद्धि पर स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। अहंकार के तीन प्रकार माने जाते हैं जिन्हें सात्त्विक अहंकार, राजसी अहंकार तथा तामसी अहंकार कहा जाता है।

(20) मनुष्य प्रकृतिजन्य गुणों के द्वारा परवश हुए कर्म करता है :–

वस्तुतः मनुष्य कोई कर्म नहीं करता है यह तथ्य सत्य प्रतीत नहीं होता है परन्तु यही कथन सत्य है। सामान्य व्यक्ति यह जानता है कि हमने अमुक अमुक कर्म किया है परन्तु प्रकृति से उत्पन्न त्रिगुण ही उसे संसार में नाना प्रकार के कर्मो को करवाते रहते हैं। यह तथ्य सुनने और समझने में सत्य प्रतीत नहीं होता कि मनुष्य वस्तुतः कोई कार्य नहीं करता। प्रकृति के द्वारा उत्पन्न गुण ही उससे कार्य करवाते हैं। परमात्मा की रचनात्मक शक्ति जिसे प्रकृति कहा जाता है इसके तीन गुण हैं, जिन्हे सत, रज, तम कहते हैं। यह तीनों गुण प्रकृति से उत्पन्न होते हैं अर्थात् प्रकृति इनको उत्पन्न करती है। प्रकृति जब इन तीन गुणों को उत्पन्न करती है तो मनुष्य उन्हीं के अधीन रहकर कर्म करता रहता है। इस कारण यह कहा जाता है कि मनुष्य स्वयं कुछ कर्म नहीं करता है प्रकृतिजन्य गुण ही मनुष्य कर्म करवाते हैं और उसे कर्मो के सम्पादन हेतु बाध्य करते हैं। यह त्रिगुण मनुष्य से क्या क्या कर्म करवाते हैं इस तथ्य पर हमें गहनता से विचार करना पड़ेगा। इसी विचार पर कुछ भाव यहां प्रस्तुत किये जा रहे हैं।

(क) सात्त्विक गुण क्या कर्म करता है ?

सात्त्विक गुण मनुष्य से शुभ कर्मो का सम्पादन करवाता है। सात्त्विक गुण की शरीर में जब वृद्धि हो जाती है तो वह परमात्मा के चिंतन में लग जाता है। समाज की सेवा, लोगों के कल्याण के निमित्त कर्म करने पर विचार करता है और उसके लिए उद्वत होता है। इसके अतिरिक्त सात्त्विक गुण के कारण ही मनुष्य की प्रवृत्ति पूजा उपासना में हो जाती है और वह देवी देवताओं के यजन और पूजन की ओर उन्मुख हो जाता है। सात्त्विक गुण से प्रभावित मनुष्य में निम्न गुणों का प्रादुर्भाव देखा जाता है।

(एक) सरलता : प्रत्येक कार्य में सरलता का बर्ताव करना, प्रत्येक सम्बंधित व्यक्ति से सहजता से बोलना और आंतरिक रूप से भी सहज हो जाना यह सरलतारूपी गुण मनुष्य में सत्त्वगुण के प्रभाव से प्रकट होता है।

(दो) सत्यता : सात्त्विक गुण के अधीन जब मनुष्य हो जाता है अर्थात् मनुष्य में जब सत्त्व गुण की वृद्धि हो जाती है तो उसमें सत्य का आचरण करने की इच्छा प्रकट होती है और वह सत्य के आचरण की ओर अनायास ही उन्मुख हो जाता है।

(तीन) संतोष : सात्त्विक गुणों से प्रभावित मनुष्य में संतोषरूपी गुण प्रकट होता है वह सांसारिक वस्तुओं के प्रति संतोष का भाव रखता है। उसे भगवान की व्यवस्था के अधीन

जो कुछ भी प्राप्त हुआ है उसमें उसे संतोष रहता है। प्रसन्न रहना उसका विशेष गुण है। जो संतोष के कारण आता है। मनुष्य में जब असंतोष होता है तब वह दुःखी रहता है। इस कारण संतोष से सुख स्वतः ही उत्पन्न होता है।

(चार) पवित्रता : मन में किसी प्रकार का कुविचार न आने देना पवित्रता का प्रमुख लक्षण है। सात्त्विक गुण के प्रभाव से मनुष्य में कुविचारों का समापन होने लगता है और जो विचार आते भी हैं वे सात्त्विक बुद्धि के द्वारा ठीक ठीक प्रकार से विनिश्चित किये जाते हैं।

(पांच) शम : मन तथा बुद्धि को शान्त करना उसे सांसारिक क्रियाकलापों के हलचल से पृथक् कर देना शम कहा जाता है। जब मनुष्य में सत्त्वगुण की प्रबलता होती है तो यह शमरूपी गुण उसमें प्रबलरूप से प्रकट हो जाता है।

(छः) दम : इन्द्रियो का स्वभाव है कि वे सांसारिक विषय भोगों की ओर अनायास ही भागती हैं। उन्हें सांसारिक विषयों की ओर भगाने का प्रयास नहीं करना पड़ता है। जब साधक मनुष्य अपनी इन्द्रियों को विषयों से रोकता है और रोकने की चेष्टा करके विषयों से निवृत्त कर देता है तो इस क्रिया को दम कहा जाता है। सत्त्वगुण के प्रभाव से मनुष्य में दमरूपी गुण प्रकट हो जाता है।

(सात) तप : परमात्मा के नाम का जप तथा उसका स्मरण करना विशेष प्रकार का तप है। सात्त्विक गुण के प्रभाव से विशेष तपरूपी गुण स्वतः ही प्रकट होता है। इस कारण सत्त्व गुण के प्रभाव से मनुष्य परमात्मा के नाम जपरूपी कर्म का सम्पादन करता है।

सात्त्विक गुण की वृद्धि से मनुष्य में उक्त गुणों के अतिरिक्त अन्य नाना प्रकार के गुण स्वतः ही उत्पन्न होते हैं जैसे समता, उपरति, तितिक्षा, ज्ञान, वैराग्य, ऐश्वर्य, त्याग, बल, स्मृति, कौशल, कोमलता, विनय, साहस, उत्साह, गंभीरता, आस्तिकता, कीर्ति आदि आदि गुण भी सहज भाव से उसमें रहते हैं। इस प्रकार मनुष्य स्वयं तो कुछ नहीं करता वह सात्त्विक गुण के कारण उत्पन्न हुए गुणों के अधीन रहकर नाना प्रकार के कर्म परवश हुए करता है। यह गुण ही उसे कर्म करने को बाध्य करते हैं। अर्थात् सात्त्विक गुण ही उससे कर्म करवाता है।

(ख) रजोगुण क्या कर्म करवाता है ?

रजोगुण जब मनुष्य में प्रकट हो जाता है तो उससे नाना प्रकार के सांसारिक कर्मो का सम्पादन करवाता है। वस्तुतः मनुष्य की प्रवृत्ति रजोगुणी होती है। इस कारण वह संसार की क्रियाओं तथा विषयों की ओर वह स्वतः ही आकर्षित होता है। जब मनुष्य में

रजोगुण की प्रबलता हो जाती है तो वह अनेक प्रकार के सांसारिक कर्मो में लिप्त होता है। जब कोई मनुष्य नाना प्रकार के सांसारिक कर्मो में सक्रिय हो जाए तो यह समझना चाहिए कि उसमें राजसी गुण की प्रबलता है। राजसी गुण के अधीन रहकर मनुष्य धन के संचय सम्पत्ति के एकत्रीकरण, ऐश्वर्य, पद, प्रतिष्ठा की प्राप्ति हेतु कर्म करता है तथा सम्मान की प्राप्ति का प्रयास करता है।

राजसी गुण से प्रभावित मनुष्य का जब आप अवलोकन करेंगे तो आप पायेंगे कि राजसी गुण से प्रभावित मनुष्य उक्त कर्मो का सम्पादन बड़ी सक्रियता से किया करता है और उसमें यह भाव रहता है कि कैसे धन,सम्पत्ति, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, पद आदि को प्राप्त किया जाए? इस प्रकार रजोगुण की प्रधानता से मनुष्य नाना प्रकार के सांसारिक कर्मो का सम्पादन अनायास ही किया करता है। उसमें संसार के प्रति मोह भी उत्पन्न हो जाता है। इसलिए वह संसार में ही रहता है और संसारिक विषयों का वर्णन करना चाहता है। इस प्रकार रजोगुण मनुष्य संसारिक कर्मो को करवाता रहता है।

(21) मनुष्य किसी भी क्षण कर्म किये बिना नहीं रह सकता :–

प्रत्येक मनुष्य प्रत्येक क्षण कर्म करता है। इसका अभिप्राय यह है कि कोई भी मनुष्य किसी भी क्षण कर्म किये बिना शान्त नहीं रह सकता। यह तथ्य आश्चर्यप्रद और विस्मयकारी प्रतीत होता है। मनुष्य यदि शान्त होकर बैठ जाए तो भी क्या वह कर्म करेगा? तो भी क्या कर्म होगा ? किस प्रकार होगा यह समझने का विषय है। हम प्रत्येक क्षण कर्म करते हैं। यदि सो भी जाते हैं तो भी सोने का कार्य होता रहता है। इस तथ्य को हमें गहनतापूर्वक समझना पड़ेगा। हमारे शरीर में जो तेरह करण हैं उनसे कार्य होता है और वह करण प्रत्येक अवस्था में किसी न किसी प्रकार से कर्म करते रहते हैं। हमारे शान्त बैठ जाने पर पर हमारे जो करण हैं वे कैसे कार्य करते हैं? इस पर हमें विचार करना चाहिए। इससे यह स्पष्ट होगा कि हम किसी भी क्षण कर्म किये बिना नहीं रह सकते हैं। तेरह करण किस प्रकार से प्रत्येक क्षण कार्य करते हैं यह तथ्य यहां प्रस्तुत किया जा रहा है।

(एक) कर्ण : नेत्रों को यदि हम बंद कर लें और शान्त भाव से बैठे तो भी कर्ण अर्थात् कानों से सुनने का कार्य होता रहता है। हमारे चारों ओर जो वातावरण है और हम जिस वातावरण के सम्पर्क में हैं वहां जो भी ध्वनियां हो रही हैं वे ध्वनियां हमें सुनाई पड़ती हैं। इस प्रकार शान्त भाव से बैठने पर भी आंखों को बंद कर लेने के पश्चात् भी कान अर्थात् श्रवणेन्द्रिय कार्य करती रहती है और उससे अनेक प्रकार की सम्पर्कित ध्वनियों का ग्रहण होता रहता है। यदि हम कानों को बंद भी कर लें तो अंतःकरण से ध्वनियां ग्रहण की जाती है।

(दो) नेत्र : स्वाभाविक रूप से नेत्र देखने का कार्य करते हैं। यदि हम शान्त भाव से बैठ भी जाऐ तो भी नेत्र संसार को देखने का कार्य करते रहते हैं। हमारे नेत्रों की जो दृश्य क्षमता है उस क्षमता तक हमारे नेत्रों में स्वतः ही अनेक प्रकार के दृश्य आया करते हैं और उन दृश्यों को नेत्र स्वाभाविक और सहज रूप से ग्रहण किया करता है। इस प्रकार नेत्र देखने का कार्य निरन्तर करते हैं। यदि हम नेत्रों को बंद भी कर लें तो भी जो दृश्य हमारे स्मृति में संचित हैं वे मन के द्वारा स्वतः और स्वाभाविक रूप से देखे जाते हैं। इस प्रकार नेत्रों की देखने की जो क्रिया है वह सदैव होती रहती है। स्वप्नावस्था में भी नेत्र देखते हैं तभी अनेक प्रकार के कर्म हम स्वप्न की अवस्था में करते हैं।

(तीन) नासिका : नासिका के द्वारा गंध लेने का तथा स्वांस प्रस्वांस का कार्य स्वतः और स्वाभाविक रूप से होता रहता है। यदि हम शान्त भाव से बैठ भी जाऐ तो भी हमारी नासिका गंध लेने का कार्य करती रहती है और श्वास प्रश्वास रूपी कर्म स्वतः हुआ करता है। यह कर्म स्वप्नावस्था तथा निद्राकाल में भी स्वतः ही होता है। इसके लिए हमें कुछ करना नहीं पड़ता। इस प्रकार हम नासिका से गंध लेने का जो कार्य करते हैं वह भी स्वतः ही होता है। जो गंध वायु के माध्यम से नासिका तक आती है वह गंध स्वतः ही नासिका के द्वारा ग्रहण की जाती है। इस प्रकार नासिका के गुण गंध के ग्रहण रूपी कर्म भी स्वतः और स्वाभाविक रूप से हुआ करता है। हमारी नासिका वातावरण में प्रचलित गंध को स्वतः ग्रहण करती है और श्वास प्रश्वास भी लेती रहती है। इन दोनों क्रियाओं को हम किसी भी प्रकार से रोक नहीं सकते हैं।

(चार) त्वचा : हमारे शरीर के सम्पूर्ण भाग में त्वचा फैली रहती है। अर्थात् हमारा स्थूल शरीर त्वचा से आवृत रहता है। यह त्वचा रूपी ज्ञानेन्द्रिय अपने स्पर्शरूपी गुण के कारण विशिष्ट है। त्वचा के सम्पर्क में कठोर, मृदु, शीतल, उष्ण आदि आदि जो कुछ भी आता है वह उसको अपने विषय के अनुसार स्वतः ही ग्रहण करती है। त्वचा का जो स्पर्शरूपी गुण है उसे हम किसी प्रकार भी रोक नहीं सकते हैं। इस प्रकार त्वचा भी स्वतः और स्वाभाविक रूप से अपने स्पर्शरूपी गुण को ग्रहण करती रहती है। स्वप्नावस्था में भी त्वचा का स्पर्शरूपी गुण प्रकट रहता है। मात्र निद्राकाल में हमें मध्यम स्पर्श का आभास नहीं होता है और यदि कोई अति शीतल और अति उष्ण पदार्थ हमारी त्वचा के सम्पर्क में आता है तो हमारी त्वचा तत्काल उसे अपने संज्ञान में लेकर उसके बोध को मन को प्रेषित कर देती है। इस प्रकार त्वचा का स्पर्शरूपी गुण भी सदैव क्रियाशील रहता है।

(पांच) जिह्वा : शान्त बैठने, देखने, कानों को बंद कर लेने, नेत्रों को मींच लेने पर भी जिह्वारूपी ज्ञानेन्द्रिय अपने विषय में बरतती रहती है। हम प्रत्येक स्थिति में जिह्वा से

स्वाद का आभास करते हैं। जिह्वा के सम्पर्क में जो भी भोजन आता है वह किस स्वाद वाला है? इसका आभास जिह्वा स्वतः और स्वाभाविक रूप से कर लेती है। हम बैठने, लेटने, चलने आदि की स्थिति में भी जिह्वा के द्वारा रस को ग्रहण करने के कार्य को रोक नहीं सकते हैं यह स्वतः और स्वाभाविक रूप से हुआ करता है।

(छः) वाक् : वाक् अर्थात् वाणी रूपी कर्मेन्द्रिय को मौन के द्वारा रोका जा सकता है परन्तु वाणी आन्तरिक रूप से मन और बुद्धि के माध्यम से अपने विचार प्रकट किया करती है। आपने अधिकांशतः यह देखा होगा तथा अनुभव किया होगा कि हम जब वाणी से कुछ नहीं कहते हैं तब भी मन और बुद्धि से बहुत कुछ कहते रहते हैं। वाक् अर्थात् वाणी बाह्य रूप से अपने गुण शब्द को प्रकट करती रहती है परन्तु यह आन्तरिक रूप से भी मन और बुद्धि के द्वारा अपने गुण शब्द को प्रस्तुत करती रहती है। इस प्रकार बोलने की जो क्रिया है वह जागृत तथा स्वप्न अवस्था में चलती रहती है।

(सात) हस्त तथा पाद : हाथ और पैरों की जो क्रियाऐं हैं वे भी मन और बुद्धि के द्वारा संचालित होती हैं। हाथ का गुण आदान–प्रदान है तथा पैरों का गुण गमन है। हाथ और पैर शान्त भाव से बैठ जाने पर अक्रिय हुए प्रतीत होते हैं परन्तु वे मन और बुद्धि के द्वारा क्रियाशील रहते हैं। आप इस तथ्य पर गहनतापूर्वक जब विचार करेंगे तो पायेंगे कि मन और बुद्धि अपनी शक्ति से हस्त और पाद को जागृत तथा स्वप्नावस्था में क्रियाशील रखती है। स्वप्नावस्था में हाथ और पैरों की क्रियाशीलता शान्त हो जाती है परन्तु वह वास्तविक रूप से अशान्त रहती है।

(आठ) उपस्थ और पायु : उपस्थ और पायु अपने गुण मल मूत्र विसर्जन में स्वतः ही बरतते हैं। इन्हें कुछ समय के लिए विराम दिया जा सकता है परन्तु शरीर में जो क्रियाऐं होती हैं उनसे स्वतः ही मल मूत्र का निर्माण हुआ करता है। इस कारण उपस्थ और पायु के गुण स्वतः ही अपने गुण में बरतते हैं।

(नौ) मन : शरीर में मन सबसे अधिक कार्य करता है। जितने भी करण हैं उन सबमें मन को अत्यंत गतिमान अस्थिर और चंचल माना जाता है। यह निरन्तर चलता रहता है। जागृत और स्वप्न में इसकी गति बहुत तेज रहती है। जागृत अवस्था में शरीर के शान्त भाव से बैठ जाने पर भी मन अपने विषय संकल्प में बरतता रहता है और तेजी से अनेक प्रकार की चेष्टाऐं करता है। वस्तुतः जो यह तथ्य शास्त्रों में कहा जाता है कि मनुष्य किसी भी क्षण कर्म किये बिना नहीं रह सकता है उसका विशिष्ट संकेत मन की ओर भी है। मन अत्यंत गतिशील रहता है इसलिए मन के द्वारा अनेक प्रकार की क्रियाऐं स्वतः ही हुआ करती हैं।

(दस) बुद्धि : मन जितनी तेजी से कार्य करता है उतनी ही तेजी से बुद्धि भी कार्य करती है। मन अनेक प्रकार के कार्यो का संकल्प करता रहता है और बुद्धि उसका विकल्प खोजती रहती है। इस प्रकार संकल्प और विकल्परूपी क्रियाऐं स्वतः और स्वाभाविक रूप से चलती रहती हैं। मन भी शान्त नहीं बैठता है इसलिए बुद्धि भी अशान्त रहती है। सुषुप्ति अवस्था में अर्थात् निद्राकाल में मन और बुद्धि की क्रियाएं शान्त हो जाती हैं। शेष समय वे चलती रहती हैं। मनुष्य किसी भी क्षण कर्म किये बिना नहीं सकता, इसका विशेष संकेत बुद्धि की ओर भी है।

(ग्यारह) अहंकार : मन तथा बुद्धि की तरह से अहंकार भी बहुत सूक्ष्म तत्त्व है जो मनुष्य को निरन्तर सांसारिक स्थिति का आभास करवाता रहता है। मनुष्य संसार में जो कुछ भी है उसका ही उसे आभास रहता है और इस आभास के कारण वह अपना वास्तविक स्वरूप भी विस्मृत कर देता है अर्थात् भूल जाता है। इस प्रकार अहंकार भी निरन्तर कार्य करता रहता है।

मनुष्य के शान्त भाव से बैठने पर भी मन बुद्धि और अहंकार के द्वारा निरन्तर क्रियाऐं होती रहती हैं। इसलिए ऐसा कहा जाता है, माना जाता है कि मनुष्य किसी भी क्षण कर्म किये बिना नहीं रह सकता है। जागृत और स्वप्न की अवस्था में तो यह क्रिया शीलता स्पष्ट प्रतीत होती है परन्तु सुषुप्ति अवस्था में सम्पूर्ण कार्यो के समाप्त हो जाने पर कारण शरीर से सोने का कार्य होता हैं। इसलिए ऐसा कहा जाता है कि कोई भी मनुष्य किसी भी क्षण कर्म किये बिना नहीं रह सकता है।

(22) अहंकारयुक्त मनुष्य अपने को कर्ता मान लेता है :–

पूर्वोक्त प्रकार से दो तथ्य स्पष्ट किये गए हैं जिनमें पहला हम सब जो क्रियाऐं करते हैं वे प्रकृति के द्वारा उत्पन्न त्रिगुणों के कारण होती हैं। दूसरा मनुष्य किसी भी क्षण कर्म किए बिना नहीं रह सकता। यह दोनों तथ्य अत्यंत विचारणीय हैं। इन पर गहनता से विचार करना आवश्यक है। इस तथ्य पर जब हम गहनता से विचार करते हैं तो पाते हैं कि मनुष्य किसी भी कर्म का कर्ता नहीं है। प्रकृतिजन्य त्रिगुण ही हमारे कर्मो के कर्ता हैं। वे हमें किसी भी क्षण विश्राम नहीं करने देते हैं और अनेक प्रकार के सांसारिक कर्मो का सम्पादन करवाते रहते हैं। मनुष्य अपने को कर्ता मान लेता है यह विकार है, विकृति है, दोष हैं। मनुष्य को अपने को कर्ता मानना उचित नहीं है। जैसे कोई मशीन विद्युत के आने पर कार्य करती है उसमें जो कुछ गति होती है वह विद्युत के कारण रहती है और उसमें जो कुछ उत्पादन होता है अथवा उसके द्वारा जो भी कार्य किया जाता है वह मशीन द्वारा

नहीं होता। कार्य का, उत्पादन का हेतु और मूल कारण विद्युत ही है। जैसे विद्युत जाती है तो मशीन अपना कार्य करना समाप्त कर देती है। इस कारण यदि मशीन यह समझे कि हमारे द्वारा उत्पादन हो रहा है,कार्य हो रहा है तो उसका यह कहना ठीक नहीं है। वह विद्युत के अभाव में किसी भी प्रकार क्रियाशील नहीं हो सकती है।

मानव शरीर भी त्रिगुणों के अधीन कार्य करता है। शरीर मशीन की तरह एक यंत्र है। इसमें जो भी क्रियाऐं होती हैं। वह सम्पूर्णता से त्रिगुणरूपी विद्युत के कारण होती हैं। यह विद्युत तीन प्रकार की होती है। जैसे एक ट्रैक्टर भूमि को जोत सकता है वह सामान ढो सकता है और पानी भी निकाल सकता है। यह तीनों कार्य एक ही मशीन अर्थात् ट्रैक्टर करता है। इसी प्रकार शरीररूपी यंत्र भी सात्विक गुण के कारण पृथक्–पृथक् कार्य करता है। अर्थात् जब शरीर सात्त्विक गुण के अधीन रहता है तो उसकी कार्य पद्धति अलग प्रकार की होती है और जब राजसी गुण के अधीन रहता है तो वह पृथक् प्रकार से कार्य करता है और जब तमोगुण के अधीन रहता है तो वह पृथक् प्रकार के कार्य करता है। शरीर तो एक ही है पर त्रिगुणों के प्रभाव से उसकी क्रियाविधि भिन्न हो जाती है।

एक कृषक कहता है कि मैने खेत को जोता बोया है तब फसल उत्पन्न हुई है। एक शिक्षक कहता है कि मैने अमुक बालक को पढ़ाया है तब वह उत्तीर्ण हो पाया है। एक मजदूर कहता है कि मैने आज बहुत कार्य किया है। एक अभियंता कहता है कि मैने अमुक निर्माण किया है। एक चिकित्सक कहता है कि मैने अमुक मरीज को उचित दवा दी तो वह निरोगी हो गया है। यदि हमने उसको उचित दवा न दी होती तो उसकी मृत्यु हो जाती। एक लेखक कहता है कि हमने अनेक पुस्तकें लिखी हैं। एक वकील कहता है कि मैने उस मुकदमें बहुत बहस की तब जाकर मुकदमा छूट पाया। एक माता कहती है कि मैने बच्चों की बहुत सेवा की तब वह बड़े हो पाये। एक युवक कहता है कि हमने परिवार के लिए बहुत सी विलासता पूर्ण वस्तुएं एकत्र कर दी। उस सारे परिवार के लिए हमने बहुत परिश्रम किया और बहुत सेवा की तब वे सब बड़े हो पाये। एक पुत्र कहता है कि हमने अपने माता पिता की बहुत सेवा की है। एक नाविक कहता है कि हमने सावधानी पूर्वक नाव चलायी है नहीं तो नाव नदी में डूब जाती। एक चालक कहता है कि मैने बहुत तेजी से कार चलायी तब जाकर कहीं समय से पहुंच पाया हूं। आदि आदि कथन मनुष्य के कर्तापन की ओर संकेत करते हैं।

मनुष्य उन वाक्यों से अपने को कर्म का कर्ता मान लेता है। कर्म का कर्ता मान लेने से बंधन हो जाता है। शास्त्र कहता है कि समस्त कर्म प्रकृतिजन्य गुणों के द्वारा ही किये जाते हैं यह तथ्य विरोधी भावना वाला है। मनुष्य कहता है कि मैं कर्ता हूं। शास्त्र कहता है

कि प्रकृतिजन्य गुण ही कर्ता हैं। अपने को यदि कर्ता मान लिया जाए तो यह बंधन का कारण हो जाता है और यदि प्रकृतिजन्य गुणों को कर्ता माना जाए तो यह बंधन समाप्त हो जाता है। यह तत्त्व की बात है यही यथार्थ है यही सत्य है। इस सत्य को हमें समझना चाहिए। जब मनुष्य इस सत्य को समझ जाता है तो वह कर्तापन के भाव से अपने को मुक्त कर लेता है। वह मानता है कि मैं किसी भी क्रिया का कर्ता नहीं हूं प्रकृतिजन्य गुण ही कर्ता हैं। ऐसी स्थिति आने पर,ऐसा भाव प्रकट हो जाने पर मनुष्य मुक्ति की ओर जाता है। ऐसा भाव मनुष्य को अहंकार से निवृत्त कर देता है।

मनुष्य जब अहंकार से युक्त हो जाता है अर्थात् आवृत हो जाता है तो वह अपने को कर्ता मान लेता है। मनुष्य वस्तुतः कर्ता नहीं है। कोई व्यक्ति यह कहता है कि हमने अपने शत्रु को परास्त कर दिया है उसे मार डाला है तो उसका यह कथन सही नहीं हैं मनुष्य न तो किसी को परास्त कर सकता है और न ही मार सकता है। मनुष्य की हार का उसकी मृत्यु का कारण मनुष्य नहीं है। उसकी हार तथा मृत्यु का कारण उसके कर्म हैं। मनुष्य न तो कभी मारता है और न ही मारा जाता है और न ही किसी को मरवाता है तथा न ही स्वयं मरता है। यह सम्पूर्ण कर्म व्यवस्था ही सम्पूर्ण कार्य का सम्यक्रूपेण सम्पादन करती है और मनुष्यों से करवाती है। इस कारण मनुष्य को अपने को किसी भी कर्म का कर्ता नहीं मानना चाहिए। यह भाव जब दृढ़ हो जाता है तो मनुष्य साधक से सिद्ध हो जाता है।

(23) कर्म करने का अधिकार मनुष्य का है :–

परमात्मा ने मनुष्य को कर्म करने का अधिकार प्रदान किया है। वह जैसे कर्मो को करना चाहता है कर सकता है। कर्म करने का अधिकार मनुष्य का है यह तथ्य शास्त्र कहते हैं। यह कथन शास्त्रसम्मत है और अत्यंत विचारणीय भी है। कुछ मनुष्य सत्कर्म अर्थात् अपने कल्याण के लिए तथा अन्य लोगों के कल्याण के लिए कार्य करते हैं। कुछ लोग अपने भरण पोषण रूपी कार्य को ही करते रहते हैं। कुछ लोग दूसरों को प्रताड़ित करके दुष्कर्मो का सम्पादन करके धन सम्पत्ति आदि एकत्र करने का प्रयास करते हैं। उन्हें इस प्रकार के दूसरों की प्रताड़ना रूपी कर्मो में आनन्द की अनुभूति होती है एक ही प्रकार का पुरूष तीन प्रकार के पृथक्–पृथक् कर्मो को करता है। यह अत्यंत आश्चर्यजनक तथ्य है। क्योंकि कर्म करने का अधिकार परमात्मा ने हमें दे रखा है। इस कारण हम जो कर्म करना चाहते हैं वह कर लेते हैं। किसी की सहायता की इच्छा करने पर उसकी सहायता कर देते हैं। किसी को कतिपय कारणों से अथवा अकारण ही मारना पीटना चाहते हैं तो

उसे मार पीट सकते हैं। किसी की सेवा करना चाहते हैं तो उसकी सेवा सहायता कर सकते हैं और किसी के धन को लूटना चाहते हैं तो वैसा करने का प्रयास कर सकते हैं।

परमात्मा ने आपको यह सब अधिकार दिए हैं। इसीलिए कहा जाता है कि मनुष्य को कर्म करने का अधिकार है। कर्म करने के अधिकार में बड़ी स्वतंत्रता हमें प्रदान की गई है। इस कारण लोग भ्रमित भी हो जाते हैं कि हमें परमात्मा ने क्या क्या अधिकार दे रखे है? जो भी अधिकार दे रखे हैं उनके अधीन हम जो चाहें वह करें, हमारी जैसी इच्छा आवे वैसा हम करें। अथवा हमसे ही परमात्मा भले बुरे कर्म करवाता है। हम अपने आपसे कोई भले बुरे कर्म नहीं करते हैं। यह विचार और इस विचार को मानना भ्रमपूर्ण तथ्य है। जिस पर हमें विचार करना होगा और कर्म के सम्पादन के तथ्यों को ही जानना होगा। मनुष्य जब अपने को नियंत्रित करने की क्रिया से पृथक् हो जाता है तो वह बहुत बड़े बड़े दुष्कर्म करके भी यह विचारता है कि हमने यह दुष्कर्म नही किये हैं। परमात्मा ने हमसे करवाये हैं। अंधधुंध दुष्कर्मो का सम्पादन करके अपने को दुःखों का तथा अनेक प्रकार के नरको का हेतु बना लेते हैं। इस कारण कर्म के सम्यक् कार्यान्वयन को हमें समझना ही होगा और यह विचार करना होगा कि हमें वहीं कर्म करने हैं जो उचित हैं। मनुष्य को कर्म करने की स्वतंत्रता का जो अधिकार प्राप्त हुआ है उसका दुरूपयोग हमें कदापि नही करना चाहिए। इस सम्बंध में कर्म के सम्पादन के सही सही स्वरूप को समझना चाहिए।

परमात्मा ने मनुष्य को जो बुद्धि रूपी तत्त्व प्रदान किया है। वह मनुष्य शरीर में आत्मा से निकृष्ट है और सभी से उत्कृष्ट है। बुद्धि मनुष्य के कार्यो का विनिश्चय करती है और सभी प्रकार के कर्मो का निर्धारण बुद्धि के द्वारा ही होता है। इसलिए उसकी क्रियाशीलता तथा कार्य की पद्धति को हमें समझना चाहिए। बुद्धि की कार्यपद्धति को हमें समझने के लिए निम्न तथ्यों पर ध्यान देना अति आवश्यक है।

(एक) बुद्धि मन के द्वारा संकल्पित किये गए, विचारे गए समस्त विषयों का विनिश्चय कर देती है अर्थात् मन जो कुछ भी विचार करता है उसको बुद्धि ठीक–ठीक रूप से जानती है तथा उसका निर्धारण भी करती है।

(दो) बुद्धि मन के द्वारा विचारित किए गए भले और बुरे कर्मो को अधिकांशतः जानती है तथा दोनों प्रकार के कर्मो के प्रतिपादन की स्वीकृति भी प्रदान करती है।

(तीन) बुद्धि विनिश्चय की वह शक्ति है जिससे अवैध, वैध, अनैतिक, नैतिक कार्यो का प्रतिपादन से पूर्व विनिश्चय किया जाता है। इस कारण बुद्धि मानव शरीर में बहुत महत्वपूर्ण तत्त्व है।

(चार) बुद्धि की सकारात्मक शक्ति को विवेक कहते हैं। मनुष्य विवेक के द्वारा ही उचित और अनुचित कार्यो का परीक्षण करके कार्य करती है,जो बुद्धि उचित ओर अनुचित का परीक्षण करके उचित का आचरण तथा अनुचित का परित्याग करती है उस बुद्धि को उत्तम बुद्धि कहा जाता है। यह उत्तम बुद्धि की परख है। (पांच) उत्तम बुद्धि अर्थात् श्रेष्ठ बुद्धि का यह कर्तव्य है कि वह उचित अनुचित का, कर्तव्य अकर्तव्य का, नीति अनीति का सम्यक्रूपेण विनिश्चय करके ही कर्म के सम्पादन की अनमुति प्रदान करे।

(छः) मनुष्य की बुद्धि जब उचित अनुचित का, नीति अनीति का, कर्तव्य अकर्तव्य का निर्णय करके कर्म करती है तब वह परमात्मा द्वारा प्रदत्त अपनी स्वतंत्रता का सदुपयोग करती है और जब ऐसा नहीं करती है तो वह परमात्मा के द्वारा प्रदान किये गए कर्म के अधिकार का दुरूपयोग करती है।

(सात) मनुष्य अपने कल्याण के लिए परमात्मा के स्वरूप का चिंतन करे तथा निष्काम भाव से दूसरों की सेवारूपी कर्म करें। यदि वह दुष्कर्मो का सम्पादन करेगा तो वह स्वयं ही विनिष्ट हो जाएगा। उसका निश्चित रूप से पतन हो जाएगा।

(आठ) मनुष्य को जो कर्म की स्वतंत्रता का अधिकार प्राप्त है वह परमात्मा की ओर से प्रदत्त हुआ है। उसका दुरूपयोग करने पर उसका निश्चित दुष्परिणाम मनुष्य को भुगतना पडता है इस कारण मनुष्य को समस्त कर्मो का ठीक–ठीक विनिश्चय करके बुद्धि के द्वारा उनको परख कर शास्त्रसम्मत कर्मो का सम्पादन करना चाहिए।

मनुष्य को कर्म करने की स्वतंत्रता का जो अधिकार प्रदान किया गया है वह बहुत ही सरल है। परमात्मा ने मनुष्य को इस अधिकार को प्रदान करके उसे बहुत विशिष्ट अधिकार दे दिया है। जिससे वह अपनी आध्यात्मिक उन्नति कर सकता है तथा इस अधिकार के दुरूपयोग से वह नरकगामी भी हो सकता है। इस कारण मनुष्य को सर्वप्रथम अपनी बुद्धि के द्वारा शास्त्रों के आदेशों को समझना चाहिए। शास्त्रों में क्या उचित है ? क्या अनुचित है? क्या करना चाहिए? और क्या नहीं करना चाहिए ? इसका विधिवत विशेषकर वर्णन किया गया है। इस कारण मनुष्य को शास्त्रों का विशेष अध्ययन करके परमात्मा द्वारा प्रदत्त कर्म करने के अधिकार का सदुपयोग करना चाहिए। इस सद्उपयोग से ही मनुष्य का कल्याण है और दुरूपयोग से मनुष्य का पतन और विनाश है।

(24) कर्म फल का अधिकार परमात्मा का है :–

कर्म के क्रियान्वयन के अधिकार को परमात्मा ने मनुष्य को प्रदान किया है तथा कर्मो के परिणाम का अधिकार स्वयं अपने पास रख लिया है। इस पुस्तक के पूर्व में जो

वर्णन किया गया है उससे स्पष्ट हो जाता है कि कर्मफल की सम्पूर्ण व्यवस्था का अधिकार परमात्मा ने अपने पास सुरक्षित रख लिया है। चूंकि परमात्मा अव्यक्त और अदृश्य है परन्तु वह विभिन्न रूपों में प्रकट होता है। इसी प्रकार परमात्मा की कर्म व्यवस्था भी अदृश्य तथा अव्यक्त है, परन्तु उसे उसके परिणाम के रूप में अभास किया जा सकता है। कर्म करने की स्वतंत्रता अर्थात् कर्म करने के प्रतिपादन का अधिकार मनुष्य को देकर उसके कर्म के सम्पादन का परिणाम परमात्मा द्वारा अपने पास रखने का मुख्य कारण यह है कि हम जो कर्म करें उसके परिणाम हेतु उस परमात्मा की सत्ता का आभास करें। उसको मानें क्योंकि उसके द्वारा ही इस समग्र ब्रह्मांड का और हमारा निर्माण संभव हुआ है।

परमात्मा ने यदि कर्म के साथ उसके फल का अधिकार मनुष्य को दिया होता तो समाज में बड़ी अव्यवस्था उत्पन्न हो जाती। मनुष्य कोई कर्म करता तो उसका कर्म फल वह तत्काल ले लेता। मनुष्य फिर भी यह विचार रखता है और किया करता है कि हम अमुक कर्म करेंगे और अमुक कर्म करने से हमें ऐसा ऐसा लाभ प्राप्त होगा। इस भावना को दृष्टिगत रखकर ही प्रत्येक मानव कर्म करता है। हममे से अधिकांश मनुष्य लगभग सभी लोग किसी भी कर्म के सम्पादन के पूर्व उसके परिणाम पर अवश्य विचार कर लेते हैं तत्पश्चात् कर्मो का सम्पादन करने को उन्मुख होते हैं। फल का विचार मन में रखकर ही हम समस्त कर्म करते हैं। फल के परिणाम का विचार मन से निकाल नहीं पाते हैं। जबकि फल तो परमात्मा के अधिकार में आता है और कर्म हमारे अपने अधिकार में है। यह एक कर्म तथा कर्मफल की विडम्बना है कि कर्म के अधिकार के रहते हुए हम परमात्मा के कर्म फल के अधिकार पर विचार करके कर्म करते हैं। इसी कारण कर्मबंधन होता है। कर्मफल क्या है ? और उसका अधिकार क्या है ? यह हमे पहले समझना पड़ेगा। पहले हमें कर्म फल को समझना चाहिए तदोपरान्त कर्म फल के अधिकार को समझने का प्रयास करना चाहिए।

(क) कर्म फल क्या है ?

पूर्व में यह कहा गया है कि मनुष्य क्षण मात्र भी बिना कर्म किये नहीं रह सकता है। उसे कर्म करना ही पडेगा। प्रकृतिजन्य गुण ही उससे समस्त कर्मो को करवाते हैं। जब हम शान्त भाव से बैठते हैं तो हमारा मन तथा बुद्धि निरन्तर कार्य करती रहती है अर्थात् वह शान्त नहीं बैठती है। यदि हम बैठ कर लेट जाए तो हम लेटे लेटे भी मन तथा बुद्धि से कार्य लेते रहते हैं। मन नाना प्रकार के कार्य करता है और बुद्धि उन कार्यो को देखती रहती है। अर्थात् मन जो भी विचार करता है बुद्धि उस विचार को जानती है। परमात्मा हमारे सभी के हृदय में विराजमान है इस कारण वह मन द्वारा विचारे गए विषयो ंको

जानता है तथा बुद्धि द्वारा उसका विनिश्चय भी जानता है। मन तीन प्रकार के विचारों को विचारता है। एक शुभ विचार, दूसरे अशुभ विचार तथा तीसरे शुभ और अशुभ दोनों प्रकार के विचार, जिसे हम मिश्रित अथवा शुभाशुभ कहते हैं। बुद्धि इस प्रकार मन द्वारा विचारे गए शुभ,अशुभ तथा शुभाशुभ विचारों को देखती है और जानती है। परमात्मा भी उसे देखता है और जानता है। परमात्मा हमारे द्वारा विचारे गए शुभ विचारों का शुभ परिणाम, अशुभ विचारों का अशुभ परिणाम तथा शुभाशुभ विचारों का शुभाशुभ परिणाम देता है। परमात्मा शुभ अशुभ तथा शुभाशुभ समस्त विचारों के प्रकार एवं भेद को जानता है।

मन जैसा विचार करता है अर्थात् शुभ विचार करता है तो वह शुभ वाणी के रूप में प्रकट होता है और अशुभ तथा शुभाशुभ विचार रहते हैं तो वे भी वाणी के द्वारा प्रकट होते रहते हैं। मन द्वारा विचारे गए विषय को बुद्धि द्वारा विनिश्चत किये गए विषय को वाणी प्रकट करती है। यही कर्म की दूसरी स्थिति है। वाणी वैसा ही कहती है जैसा मन तथा बुद्धि विचार और विनिश्चय करते हैं। जैसे हम परमात्मा की प्रार्थना करते हैं तो मन बुद्धि वैसा कहती है। वाणी प्रार्थना करने लगती है। मन तथा बुद्धि जब क्रोधित होकर किसी को भला बुरा कहने के लिए आदेश करती है तब वाणी उस व्यक्ति को भला बुरा कहती है। हमारे वाणी के विषय को परमात्मा जानता है और जैसा शुभ,अशुभ तथा शुभाशुभ वह कहती है वैसा ही परिणाम परमात्मा हमें देता है। कर्म का अंतिम और तीसरा कार्य हाथ पैरों से होता हैं। मन यदि मंदिर जाने का विचार किया और बुद्धि ने भी वैसा ही विनिश्चय किया तो वाणी ने घर में यह बताया कि मैं मंदिर जा रहा हूँ। बुद्धि ही मंदिर की ओर बढ़ने का आदेश पैरों को देती है। तब पैर मंदिर की ओर उठने लगते हैं। भगवान की पूजा अर्चना आरम्भ होती हैं और मंदिर जाकर मनुष्य भगवान की आरती पूजन आदि आरम्भ कर देता है। इस प्रकार वह शुभ कर्म करता है और इस शुभ कर्म का परिणाम भी शुभ ही प्राप्त होता है। दूसरी प्रकार से किसी को मारने पीटने का विचार जब मन में आता है तो उसका भी विनिश्चय बुद्धि करती है और मारने पीटने का कर्म हम हाथ से करते हैं। इस अशुभ कर्म के परिणाम का अधिकार परमात्मा को है। वह कर्मफल का प्रदाता है अर्थात् देने वाला है जो परिणाम हमें अपने कर्म के उपरान्त प्राप्त होता है वह ही कर्मफल कहलाता है।

(ख) कर्म फल का अधिकार :–

जैसे एक परिवार में एक मुखिया होता है वह सम्पूर्ण परिवार को नियंत्रित करता है और परिवार का कोई सदस्य धृष्टता करता है तो वह उसे डांटता फटकारता, यथा संभव मारता पीटता और समझाता भी है। मुखिया परिवार के प्रत्येक सदस्य का कार्य देखता है

और उसे परख कर उसके फल की व्यवस्था करता है। वैसे ही परमात्मा इस समग्र जगत का मुखिया है, उत्पत्ति करता है तथा समस्त जगत के सदस्यों के कर्मो को जानता है। चाहें वह मनसः कार्य हो अथवा वाचा या कर्मणा कार्य हो। प्रत्येक कार्य उसकी दृष्टि में रहता है। मुखिया जैसे अपने परिवार को नियंत्रित करता है इसमें यदि एक बालक ने दूसरे बालक को मारा पीटा है तो वह प्रताड़ना देने वाले बालक को स्वयं पीटता है। इसी प्रकार वह परमात्मा इस जगत को नियंत्रित कर रहा है तथा हमने यदि किसी व्यक्ति को गाली दी है या मारा पीटा है तो हम परमात्मा के कोप भाजन के शिकार हो जाते हैं। यदि पीड़ित पक्ष उस उत्पीड़न का उत्तर देने में सक्षम नहीं है तो परमात्मा स्वयं किसी माध्यम से उसका परिणाम प्रकट करता है।

हमने यदि किसी को मारापीटा है तो यह निश्चित है कि परमात्मा द्वारा किसी न किसी प्रकार से संयोगों का उर्पाजन करके हम अवश्य मारे पीटे जायेंगे। हमने किसी व्यक्ति की सहायता की है तो हम भी सहायता के पात्र होंगे और हमें भी सहायता अवश्य प्राप्त होगी। यह हमारे कर्मो का परिणाम है। जो हमें अवश्य प्राप्त होता है। यह परिणाम जो प्रकट होता है वह कर्मफल है। उसे एक मात्र हमारे कृत कर्मो के आधार पर परमात्मा निश्चित रूप से देता है। यह अधिकार परिवार में जिस प्रकार मुखिया के पास होता है। राष्ट्र में राष्ट्र के अध्यक्ष के पास होता है। वह अधिकार जगत में परमात्मा के पास है और उसने अपनी कर्म व्यवस्था को सुचारू बनाकर कर्मफल के अधिकार को अपने पास रखा है। यह कर्मफल का अधिकार परमात्मा के पास सुरक्षित है।

(25) कर्म के तीन रूप –कर्म, अकर्म तथा विकर्म :–

शास्त्रों ने कर्म के तीन स्वरूपों का वर्णन किया है, जिन्हें कर्म, अकर्म तथा विकर्म कहा जाता है। प्रत्येक साधक को कर्म के इन तीनों स्वरूपों का सम्यक् ज्ञान होना आवश्यक है। जब तक साधक कर्म, अकर्म और विकर्म के अन्तर का ज्ञान नहीं प्राप्त कर पाता तब तक उसे कर्म, अकर्म और विकर्म के सम्पादन में और उनके परित्याग में कठिनाई रहती है। कर्म,अकर्म और विकर्म के अन्तर के ज्ञान के लिए हमारे पास दो विशिष्ट साधन हैं। एक शास्त्रों का निरन्तर सेवन और दूसरे महापुरूषों का सत्संग। इन दो तथ्यों से हमें कर्म, अकर्म और विकर्म के स्वरूप को समझने में बहुत सहायता मिलती है। यद्यपि इनके अंतर को समझने में अधिकांश बुद्धिमान मनुष्य भी भ्रमित हो जाते हैं और वे कर्म, अकर्म और विकर्म के अंतर को समझने में कभी भूल कर बैठते हैं, क्योंकि कर्म की गति गहन है।

शास्त्र में जो कुछ वर्णित है, जो कुछ मनुष्य को करना चाहिए, जो कुछ उसके लिए कर्तव्य कर्म है जिनका पालन करना, मनुष्य का धर्म है उन कर्तव्य कर्मो को कर्म समझना

चाहिए। जिन कर्मो से समाज में अव्यवस्था व्याप्त हो जाए, दूसरों का उत्पीड़न हो तथा दूसरों के अधिकारों का हनन हो। ऐसे कर्मो को हमें विकर्म के स्वरूप में समझना चाहिए तथा ऐसे अशास्त्रसंगत कर्मो से सदैव बचने का प्रयास करना चाहिए। यही साधक का विशिष्ट लक्षण एवं धर्म है। जब मनुष्य कर्म और विकर्म किसी का भी सम्पादन करता है तो उसका अंकन परमात्मा की व्यवस्था के अधीन हुआ करता है और उसका निश्चित परिणाम होता है। उस परिणाम से बचा जा पाना असंभव है। अर्थात् हम जब कर्म करते हैं तो भी हमें उस कर्म का परिणाम मिलता है तथा जब विकर्म अर्थात् अशास्त्रसंगत कर्म करते हैं तो भी उसका प्रतिकूल परिणाम हमें प्राप्त होता है, जो दुःख के रूप में प्रकट होता है। जब मनुष्य साधना की पराकाष्ठा पर पहुंच जाता है तब वह स्वयं के लिए कुछ नहीं करता वरन् समाज के कल्याण के लिए संकल्पों से रहित हो करके अनेक प्रकार की क्रियाओं को करता है, तो ऐसे कर्मो को जो निःस्वार्थ भाव से किये जाते हैं वे कर्म अकर्म कहलाते हैं। अकर्म का सम्पादन सामान्य मनुष्य नहीं कर सकता है, इस कारण अकर्म के विषय में सामान्य मनुष्य को कोई ज्ञान नहीं होता है, क्योंकि सामान्य मनुष्य प्रत्येक कर्म के क्रियान्वयन के पूर्व उसके फल पर अवश्य दृष्टि रखता है। इस प्रकार कर्म, अकर्म और विकर्म तीन प्रकार के कर्म मानव के द्वारा किये जाते हैं। कर्मो के सम्पादन का प्रयास साधक करता है। विकर्मो के सम्पादन का प्रयास समाज में वे लोग करते हैं जो दूषित प्रवृत्ति से आवृत होते हैं तथा तमोगुण से आच्छादित हो जाते हैं। अकर्म का सम्पादन दुर्लभ लोग ही करते हैं।

(26) कर्म की गति गहन है–

हम सब नित्यप्रति कर्म करते हैं परंतु उन कर्मों में क्या सभी कर्म शास्त्रसम्मत होते हैं? अथवा कुछ शास्त्र के प्रतिकूल भी होते हैं। यह ठीक–ठीक से सम्यक्रूपेण विनिश्चित कर पाना अत्यंत कठिन है। इसलिए अनेक ज्ञानीजन भी कर्म का ठीक–ठीक विनिश्चिय एवं सम्यक् निर्धारण में संशय से युक्त हो जाते हैं। जैसे–एक छात्र एक भाषा सीखता है और धीरे–धीरे उसमें पारंगत होता है। ऐसा बालक पहले वर्णमाला लिखता है, गिनती लिखता है और उसे बार–बार अपने गुरुजनों को दिखाता है कि हमने जो अक्षर लिखे हैं, जो गिनती लिखी है वह सही है अथवा उसमें कोई त्रुटि है। शिक्षक बालक द्वारा लिखी गयी वर्णमाला को देखकर अक्षरों और अंकों की लिखावट में जो त्रुटि होती है वह उस बालक को बताता है और हाथ पकड़कर, लिखावट दिखाकर तथा स्वयं भी लिखकर उसे शुद्ध करवाता है। इस शुद्धीकरण में तीन क्रियाऐं प्रमुख होती हैं। एक तो बालक के हाथ का पकड़ना तथा उसकी लिखावट को ठीक कराना और दूसरे लिखावट दिखाकर शुद्ध

कराना। इसके अतिरिक्त स्वयं भी लिखकर शुद्ध करना। अक्षरों एवं अंकों की शुद्धीकरण हेतु जो भी क्रियाऐं होती हैं वह महत्वपूर्ण हैं।

अक्षर एवं अंकों के शुद्धिकरण हेतु हमें प्राथमिक स्तर पर कार्य करना पड़ता है। तत्पश्चात् अक्षरों की मिलावट आरंभ होती है और अंकों के जोड़ने–घटाने, गुणा–भाग आदि की क्रियाऐं होती हैं। यह सब भाषा ज्ञान के लिए आवश्यक क्रियाऐं हैं जो प्राथमिक स्तर की हैं। धीरे–धीरे बालक भाषा का ज्ञान प्राप्त कर लेता है और वह भाषाविद् हो जाता है। पढ़ता है। नए–नए शब्दों को स्मरण करता है और इस प्रकार उसका शब्दों का भण्डार बढ़ता जाता है। फिर भी यदि कोई नवीन शब्द आता है तो उसके अर्थ के ज्ञान हेतु उसे शब्दकोष का आश्रय ग्रहण करना पड़ता है। हम अपने भी जीवन में कोई पत्र–पत्रिका पढ़ते हैं अथवा किसी पुस्तक का अध्ययन करते हैं तो अनेक शब्द हमारे ज्ञान की सीमा से बाहर होते हैं। उन्हें हम जानना चाहते हैं और सीखने के इच्छुक होते हैं। यह सब सीखना बार–बार जानने का प्रयास करना यह स्पष्ट करता है कि हमारा ज्ञान अधूरा है। हमें और जानने की आवश्यकता है। यही संसारिक ज्ञान भाषा विज्ञान आदि की जटिलता है।

कर्म का ज्ञान भी कुछ इसी प्रकार का ज्ञान है, जो बहुत वृहद् है। किस कर्म को हमें करना चाहिए? किस कर्म को हमें नहीं करना चाहिए। यह जानना बहुत कठिन है। जैसे भाषा विद्लोक जीवनपर्यंत किसी भाषा के नवीन–नवीन शब्दों को सीखते रहते हैं। उसी प्रकार मनुष्य भी जीवनपर्यंत कर्म की गहनता का ज्ञान करता रहता है। जैसे वैदिक और शास्त्रीय यज्ञों का अनुष्ठान होता है। इस अनुष्ठान में यज्ञ में प्रयोग की गयी वस्तुऐं, यज्ञ विधि, मंत्र तथा यज्ञकर्ता ब्राह्मण आदि सभी कुछ महत्वपूर्ण हैं। इन चारों तथ्यों के सम्यक् ज्ञान से ठीक–ठीक प्रकार से यज्ञ का अनुष्ठान संभव हो पाता है। किसी भी प्रकार की त्रुटि होने पर यज्ञ की सफलता में संदेह रहता है। यज्ञ में पूर्ण सफलता अथवा वांछित फल के न मिलने पर हम यह विचार करते हैं कि कहीं न कहीं कुछ त्रुटि अवश्य है। इसी प्रकार हम कर्म के तत्त्व की गहनता पर जब विचार करते हैं तो पाते हैं कि कर्म का ज्ञान बहुत ही गूढ़ है। उसे जाना जा पाना इतना सहज नहीं है। जैसे यज्ञों का अनुष्ठान संसारिक ज्ञान की गहनता होती है वैसे ही कर्म की गति भी गहन है।

क्या कर्म गति करता है? और उसमें क्या गति होती है? तथा उसकी गति कैसे होती है? यह सब जानना आवश्यक है। हमारे प्रत्येक कर्म का अंकन होता है और उसका परिणाम भी होता है। इस कारण मनुष्य को प्रत्येक कर्म का आचरण बहुत सोच समझकर करना चाहिए। कर्म की प्रत्येक स्थिति का अंकन तथा उसका परिणाम होना ही कर्म की गति है। तथा उसकी गति का प्रकार है। कैसे गति होती है? यह अदृश्य है अर्थात् उसका

क्या परिणाम होगा? यह भी अदृश्य है। इस कारण हमें प्रत्येक कर्म बहुत विनिश्चय करके संपादन करना ही यथेष्ट है। हमारे मानसिक,वाणीरूपी कर्म का भी कभी बहुत दुखद परिणाम होता है। जैसे हमने किसी गलत कार्य के लिए अपने बालक को डांटा और यह कह दिया कि तुम घर से निकल जाओ। और मुझे कभी मुंह मत दिखाना। उसने इस कथन को गंभीरता से लेकर आत्महत्या कर ली। इस प्रकार हमारे दो शब्द ही हमारे लिए घातक हो गए जो हमें नहीं कहने चाहिए। हमने तो बालक को उचित कारण के लिए डांटा और कुछ क्रोधवश शब्द कहे जिसका परिणाम अंततः भयावह हो गया। यह हमारा बच्चे को डांटने रूपी कर्म विकर्म हो गया और उसने बहुत ही प्रतिकूल परिणाम दिया। इस प्रकार कर्म की गति गहन है,बहुत सोच विचारकर कहने और करने की आवश्यकता है।

एक सामान्य मनुष्य कर्म के विषय में संशय रखता है। प्रत्येक मनुष्य के जीवन में ऐसे पल आते हैं जब हम यह विनिश्चय नहीं कर पाते हैं कि हमें क्या करना उचित है? और क्या करना अनुचित है? कभी–कभी उचित का त्याग करते हैं और अनुचित के विषय में विचार करके उसका संपादन करते हैं। कभी–कभी अनुचित का त्याग करके उचित का अनुकरण करते हैं। यह क्रम चलता रहता है। इसका विनिश्चिय हम नहीं कर पाते हैं। एक सामान्य मनुष्य की यह स्थिति है और एक ज्ञानी पुरुष की भी कुछ ऐसी ही स्थिति होती है कि कभी–कभी वह कर्म ओर विकर्म का ठीक–ठीक विनिश्चय नहीं कर पाता है। आज आपने देखा होगा कि हमें अनेक महानुभावों ने अपने को ईश्वर तुल्य घोषित कर दिया है तथा वह वैसी ही चेष्टा भी करते हैं। वे शास्त्रज्ञ हैं। उन्होंने अपने जीवन को शास्त्रों की व्याख्या में समर्पित कर दिया है। इससे अपने सामान्य मानव जीवन को ईश्वर तुल्यता में परिवर्तित कर रहे हैं। इस कारण कर्म के विषय में मोहित हैं। इसीलिए यह कहा जाता है कि कर्म की गति गहन है।

ज्ञानीजनों की कई श्रेणियां हैं, कई कोटियां हैं। एक शास्त्रों के अध्ययन से अपने को ज्ञानवान समझता है। दूसरा शास्त्रों की व्याख्या से अपने को ज्ञानवान मानता है और तीसरा देवी देवताओं की उपासना के पश्चात अपने को ज्ञानवान समझता है। अन्य कई लोग शास्त्रों के उचित तथ्य के निर्धारण कर लेने के कारण अपने को ज्ञानवान मानते हैं। इसके अतिरिक्त अन्य कई मनीषी उत्कृष्ट साधना के कारण अपने को ज्ञानवान मानते हैं। तत्त्वदर्शी या सिद्ध पुरुष तो वास्तविक ज्ञानी होता है। इस कारण इस प्रकरण में भी संशय है। यह निर्धारण कठिन है कि कौन ज्ञानवान है? संशय की निवृत्ति नहीं हो पाती है इस कारण कर्म तथा विकर्म के विषय में संशयग्रस्तता रहती है। बहुत से लोग अनेक प्रकार के शास्त्रों के अध्ययन के पश्चात भी यह विनिश्चिय नहीं कर पाते हैं कि

कौन सा शास्त्र सही है? उत्कृष्ट है, श्रेष्ठ है। किसी शास्त्र में क्या वर्णित है उसका भी निरुपण सम्यक्रूपेण नहीं कर पाते हैं। यह तो एक प्रकार से ज्ञानीजनों की संशयग्रस्तता है। ऐसे ही ज्ञानीजनों का अनेक प्रकार के शास्त्रों के अध्ययन से एक ही विषय का निश्चित निर्धारण न कर पाना कर्म और विकर्म के बारे में संशयग्रस्त रहना ये स्पष्ट करता है कि कर्म की गति गहन है।

(27) शास्त्रसम्मत कर्मों का आचरण करना चाहिए–

शास्त्रों ने मनुष्य को कर्मों के आचरण का आदेश दिया है। जो आदेश जैसा दिया है वैसा ही आचरण करना यथेष्ट है। शास्त्रसम्मत आचरण के लिए शास्त्रों में जो कुछ उल्लिखित है उसका ज्ञान होना परम आवश्यक है। शास्त्रों में जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में क्या कर्म करने चाहिए? किस स्थिति में क्या करना उचित है? वह सब का सब वर्णित किया गया है। इस कारण शास्त्रों में उल्लिखित समस्त कर्मों का आचरण करना हमारे लिए यथेष्ट है। कुछ तथ्यों का विवरण निम्न प्रकार है।

(एक) बालक की शिक्षा का उचित प्रबंध करे तथा उसको नैतिक शिक्षा प्राप्त हो ऐसी व्यवस्था करना अत्यावश्यक है।

(दो) घर में, समाज में और स्वयं भी ऐसा वातावरण न उत्पन्न करें जिससे बालक की शिक्षा बाधित हो और उसके मस्तिष्क पर विपरीत प्रभाव पड़े।

(तीन) बालक को कर्म का, नीति का, नैतिकता का तथा जीवन के उद्देश्य का ज्ञान भी अवश्य ही कराना चाहिए।

(चार) आज कल बालकों को व्यवसायिक शिक्षा प्रदान की जाती है वह जीवन के लिए परमावश्यक है, क्योंकि उससे जीवन का निर्वाह होता है। इस कारण व्यवसायिक शिक्षा अनिवार्य है परंतु साथ ही जीवन के परम उद्देश्य को बताना भी आवश्यक है।

(पांच) बालक जब किशोर अवस्था की ओर अग्रसर होता है तब वह सांसारिक आकर्षण की ओर अनायास ही स्वभावतः उन्मुख हो जाता है। यह एक अवस्था ऐसी है जो बहुत ही संवेदनशील होती है। इस अवस्था में विचार दृढ हो जाते हैं तथा वे मनुष्य के जीवन पर बहुत प्रभाव डालते हैं। इस कारण किशोरावस्था की आयु में बहुत ध्यान देना चाहिए। विशेषकर नैतिक शिक्षा के साथ उसे शास्त्र का ज्ञान देना परम आवश्यक है।

(छह) युवा अवस्था में प्रवेश होने पर मनुष्य समाज और जीवन के विषय में बहुत कुछ जान जाता है तथा उचित और अनुचित को समझ सकता है। कर्तव्य और अकर्तव्य का

उसे बोध हो जाता है। इस कारण मनुष्य को उचित और कर्तव्य का आचरण करना चाहिए।

(सात) उचित एवं कर्तव्य आचरण के बहुत महत्वपूर्ण तथ्य हैं। एक तो नैतिकता पूर्ण कार्य से जीवन यापन करना चाहिए। अनैतिक आचरण से संचित धन का उपयोग मनुष्य के लिए बहुत हानिप्रद होता है। वह मनुष्य के संपूर्ण जीवन को ही विनिष्ट कर देता है। परिवार के दायित्व का निर्वहन करना,परिवार के सुख–दुख में सम्मिलित होना, सब के साथ सहानुभूति रखना, मृदुभाषिता का व्यवहार यह मनुष्य जीवन में बहुत उपयोगी रहता है।

(आठ) मनुष्य को अपने जीवन में स्वच्छता विशेष रखनी चाहिए। किसी भी व्यक्ति से ऐसा व्यवहार नहीं रखना चाहिए जिससे उसकी व्यक्तिगत स्वच्छता प्रभावित हो। स्वच्छ मनुष्य की समाज में एक पृथक् पहचान रहती है। वह हीरे की तरह चमकता है। इस कारण मानव जीवन में स्वच्छता का बहुत महत्वपूर्ण स्थान है।

(नौ) किसी भी जीव, प्राणी, मनुष्य को कभी भी प्रताड़ित नहीं करना चाहिए, क्योंकि वे सब के सब हमारे प्रतिरूप ही हैं। हम यदि उन्हें प्रताड़ित करते हैं तो यह प्रताड़ना रूपी कर्म दुष्कर्मता की श्रेणी में आता है। इसलिए प्रताड़ना का कार्य मनुष्य के द्वारा कभी भी नहीं किया जाना चाहिए।

(दस) यदि परमात्मा ने आपको सामर्थ्यवान बनाया है तो आपको अपनी सामर्थ्य का प्रयोग दूसरों के हित के निमित्त करना चाहिए, न कि अपनी सामर्थ्य का प्रयोग दूसरों को उदिग्न करने अर्थात् परेशान करने के लिए करना चाहिए।

(ग्यारह) अपने अधीनस्थों एवं अपनों से उच्च पदस्थ लोगों से प्रेमपूर्ण व्यवहार करना चाहिए। मृदुभाषिता का प्रयोग सर्वत्र करना उचित समझा जाता है। इस कारण चाहें अपने अधीनस्थ कोई भी हो अथवा अपने से उच्च पदस्थ हो हमें सदैव ही उससे उचित व्यवहार करना ही अपेक्षित है।

(बारह) जगत का आकर्षण बहुत प्रबल और मोहक है। जिसकी मोहकता में फंसकर मनुष्य नाना प्रकार के दुष्कर्मों की ओर प्रवृत्त हो जाता है। दुष्कर्मों की प्रवृत्ति मनुष्य के जीवन को विकृत कर देती है। दुष्कर्मी मनुष्य का जीवन सभी प्रकार से नष्ट हो जाता है।

(तेरह) परिवार के दायित्व को मनुष्य को निश्चितरूपेण निर्वहन करना चाहिए। परिवार की क्या आवश्यकताऐं हैं। इस विषय पर उसे विचार करना चाहिए तथा उनकी नैतिक पूर्ति हेतु पर्याप्त श्रम करना चाहिए। श्रम का उचित समय युवावस्था ही होती है। इस कारण इस अवस्था का उपयोग हमें पूरी तरह से करना चाहिए।

(चौदह) प्रतिदिन परमात्मा की उपासना करना तथा उसका अधिकाधिक चिंतन करने का प्रयास करना चाहिए। अपने जीवन के वास्तविक लक्ष्य को कभी भी विस्मृत नहीं करना चाहिए। यही श्रेष्ठ मानव का कर्तव्य है।

(पन्द्रह) मनुष्य को दैवीय गुणों के विकास का सर्वथा प्रयास करना चाहिए तथा उसे जानना चाहिए कि दैवीय गुण क्या है ? दैवीय सम्पदा को प्राप्त पुरूषों के गुणों का वर्णन निम्न प्रकार किया जा रहा है। इसे समझ कर हमें उन गुणों के विकास का प्रयन्त करना चाहिए।

(सोलह) दैवीय गुणों को प्राप्त पुरूषों के लक्षण :–

(क) भय का जीवन में सर्वथा अभाव हो जाना, भय का अभाव नैतिक मूल्यों के आचरण से संभव हो पाता है।

(ख) मन और बुद्धि में शुद्ध विचार रखना तथा उन्हें सम्पादित करने का प्रयास करना। कामनाओं के विनाश से मन और बुद्धि शुद्ध और संयमित हो जाती है।

(ग) परमात्मा की अनुभूति हेतु निरन्तर प्रयत्नशील रहना तथा परमात्मा की अनुभूति कैसे होगी? यह जानने का प्रयास करना। शास्त्रों के निरन्तर अध्ययन और साधु पुरूषों के संग से परमात्मा की अनुभूति की प्रक्रिया का ज्ञान हो जाता है तथा स्वाध्याय से परमात्मा की अनुभूति हो जाती है।

(घ) अपनी श्रमयुक्त कमाई से गरीबों, असहायों, निर्बल वर्ग के लोगों की आवश्यकताओं को यथासंभव पूर्ण करने का प्रयास करना। यह भाव और वृत्ति मनुष्य में जब उत्पन्न हो जाती है जब वह इस जगत की समस्त वस्तुओं के स्वामित्व के भाव से मुक्त हो जाता है। इस जगत में जो वस्तुऐं हैं वह परमात्मा की हैं हमारी नहीं हैं। इस भाव के दृढ़ हो जाने से सात्त्विक दान का स्वरूप निखरता है।

(ङ) अपनी इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाना तथा इन्द्रिय विषयों में आसक्त न होना यह स्थिति वैराग्य के दृढ़ हो जाने से आ जाती है। जब मनुष्य को यह ज्ञान हो जाता है कि संसार के समस्त भोग क्षणभंगुर और विनाशी हैं तथा इनका परिणाम दुःख के रूप में प्रकट होता है। यह भाव दृढ़ हो जाने पर मनुष्य इन्द्रियों को उनके विषयों से हटाने का प्रयास करता है।

(च) स्वाध्यायरूपी कर्म का तथा अपने कर्तव्य कर्मो का व्यवहार करने का प्रयास करना। जब मनुष्य यह समझ लेता है कि यह मानव जीवन दूसरों की सेवा और मुक्ति की प्राप्ति

के लिए प्राप्त हुआ है तब वह शास्त्रों के अध्ययनरूपी स्वाध्याय में लगता है और अपने कर्तव्य कर्मो का आचरण करता है।

(छ) परमात्मा के नाम का जप तथा स्मरण का अधिकाधिक प्रयास करना यह समग्र जगत और उसकी सत्ता असत है। परमात्मा ही एक मात्र सत है इसलिए इस मानव जीवन का एक मात्र उद्देश्य है परमात्मा के नाम का जप करना। जगत असत है परमात्मा सत है इस भाव के दृढ़ हो जाने पर मनुष्य परमात्मा के नाम का जप करने का प्रयास करता है।

(ज) सर्वत्र, सबसे मृदुभाषिता रखना तथा सरलतापूर्वक आचरण करना, जब मनुष्य यह समझ लेता है कि यह प्राणी मात्र हमारा ही प्रतिरूप है और भगवान के द्वारा निर्मित है। ऐसा समझने पर वह अन्य लोगों से मृदुभाषितापूर्ण व्यवहार करता है।

(झ) किसी को किसी प्रकार कष्ट न देना, मन से, वचन से, कर्म से किसी के प्रतिकूल कुछ विचार न करना यह भावना भी तब दृढ़ होती है। जब मनुष्य यह जान जाता है कि सभी प्राणियों में परमात्मा स्थित है और वही इस शरीररूपी यंत्र में बैठकर शरीर को चला रहा है।

(ञ) किसी के द्वारा प्रतिकूल व्यवहार करने पर शान्त रहना तथा कोई प्रतिक्रिया व्यक्त न करना। यह स्थिति तब प्रबल हो जाती है जब मनुष्य यह जान लेता है कि प्रत्येक मनुष्य त्रिगुणों के अधीन रहकर ही कार्य करता है उससे परे होकर कोई भी आचरण नहीं कर सकता है।

(ट) धन, सम्पत्ति, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा, ज्ञान का अहंकार का न करना। यह स्थिति निरहंकारिता की स्थिति कही जाती है। यह मनुष्य में तब प्रकट हो जाती है जब वह जान जाता है कि यह हमारे पास जो धन सम्पत्ति, ऐश्वर्य, प्रतिष्ठा आदि है वह समय के साथ समाप्त होने वाला है तथा यह स्थायी नहीं है। (ठ) सांसारिक पदार्थो में आसक्ति का न होना तथा सभी से आसक्तिरहित आचरण करना। मनुष्य में यह भाव तब प्रबल हो जाता है जब वह जान लेता है कि जिन वस्तुओं तथा व्यक्तियों में हम आसक्त हैं वे समय के साथ समाप्त होने वाले हैं तथा उनकी कोई अपनी वास्तविक सत्ता नहीं है।

(ड) अपना अहित करने वालों के प्रति प्रतिकार की भावना का परित्याग कर देना। मनुष्य में जब क्षमारूपी गुण अपनी पराकाष्ठा को प्राप्त कर लेता है तो वह अपने अहित करने वालों के प्रति भी किसी प्रकार का प्रतिकार नहीं करता है।

(ढ) किसी भी कष्ट एवं प्रतिकूल स्थिति आ जाने पर धैर्य बनाये रखना और उसे अपने कर्मफल का परिणाम मानकर सुखपूर्वक सहन करना। यह स्थिति मनुष्य में तितिक्षारूपी

गुण के पूर्ण विकसित हो जाने पर स्वतः आ जाती है और मनुष्य भारी दुख से भी विचलित नहीं होता है।

(ण) बाहर तथा भीतर से शुद्ध रहना। वस्तुतः यह मानव शरीर अशुद्ध ही है परन्तु इसे जल आदि से बाह्यरूप से शुद्ध किया जा सकता है और कुविचारों को रोक कर इसे आंतरिक रूप से भी शुद्ध किया जा सकता है।

(त) अपने को पूज्य न मानना तथा सम्मान और आदर प्राप्त होने पर प्रसन्न न होना। यह स्थिति साधना की अत्यंत उच्च स्थिति है जो साधक को साधना की पराकाष्ठा पर जाकर प्राप्त हो जाती है और साधक अपने में श्रेष्ठता के भाव का परित्याग कर देता है। वस्तुतः एक मात्र परमात्मा ही श्रेष्ठ है और उसमें सभी प्रकार की श्रेष्ठता तथा उत्कृष्टता स्वतः ही समाहित है।

(थ) किसी से शत्रुता का न होना तथा किसी से प्रतिकार न करना और किसी के भी अहित पर विचार न करना। यह स्थिति मनुष्य में तब प्रकट हो जाती है जब मनुष्य यह मान लेता है कि सभी हमारी तरह से ही परमात्मा के द्वारा उपार्जित किये गए हैं और कोई भी हमारा हित तथा अहित नहीं कर सकता। मनुष्य का हित और अहित उसके कर्म के फल ही करते हैं।

(सत्रह) युवावस्था में मनुष्य को संयमित जीवन व्यतीत करने के पश्चात् प्रौढ़ावस्था आने पर परमात्मा की ओर उन्मुख होने का तथा जीवन के लक्ष्य को प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए। हम इस जगत में क्यों आये है ? इस मानव जीवन का क्या लक्ष्य है ? हमें परमात्मा ने यह मानव जीवन क्यों प्रदान किया है ? कैसे हमें मानव जीवन की उत्कृष्टता प्राप्त हो सकती है? उचित होगा कि मनुष्य को युवावस्था में ही इस पर विचार कर लेना चाहिए। यदि कतिपय कारणों से यह विचार युवावस्था में संभव न हो सके तो प्रौढ़ावस्था में इस पर अवश्य विचार करना चाहिए।

(अठ्ठारह) शास्त्रों के अध्ययन से सत्पुरूषों के संग से, गुरूजनों की सेवा से, महापुरूषों के सत्संग से जीवन के परम उद्देश्य मुक्ति पर विचार करना ही जीवन का अभीष्ट लक्ष्य है। उसकी ओर अग्रसर होना, उन्मुख होना ही जीवन का परम उद्देश्य माना जाता है। इस तथ्य को हमें कभी विस्मृत नहीं करना चाहिए।

(उन्नीस) प्रौढ़ावस्था में संसार की, संसारिकता की तथा सांसारिक विषयों की आसक्ति का त्याग करके पूरी शक्ति से परमात्मा के स्वरूप के चिंतन का प्रयास करना चाहिए। परमात्मा के विशिष्ट नाम ॐतत्सत का जप करना चाहिए। सोते, जागते, बैठते, चलते फिरते इसके जप को करने का प्रयत्न करना अभीष्ट है।

(बीस) जप परमात्मा के नाम के जप का क्रम टूट जाए तो स्मरण आने पर पुनः उसे आरम्भ करें और परमात्मा के स्वरूप का चिंतन करें। उस सर्वशक्तिमान परमात्मा के स्वरूप का, उसका प्राणियों के रूप में प्रकटीकरण का, संसार के विभिन्न वस्तुओं के रूप मे प्राकट्य का, सृष्टि के स्वामी का, संचालन और नियंत्रणकर्ता के स्वरूप का हमें निरन्तर स्मरण करने का प्रयास करना चाहिए। यही मानव जीवन का परम उद्देश्य है।

(28) कर्म में अकर्म तथा अकर्म में कर्म देखने वाला ज्ञानी है :–

प्रत्येक मनुष्य कर्म करता है और वह जब तक प्रत्येक कर्म स्वार्थ तथा सकाम भावना से करता है तब तक वह कर्म ही रहता है और जब स्वार्थ और सकाम भावना का हम समापन कर देते हैं तो वही कर्म अकर्म बन जाता है। कर्म में अकर्म और अकर्म में कर्म की विशिष्ट व्याख्या अनेक महापुरूषों ने की है। जैसे हम किसी फल का सेवन करना चाहते हैं तो उस फल में छिलका, बीज, रस आदि होते हैं। बहुधा ऐसे फलों में जिनमें छिलका, रस, बीज आदि होते हैं उनमें छिलका, बीज आदि को निकाल देते हैं और रस का सेवन कर लेते हैं। किसी किसी फल में छिलका और गूदा ही होता है जैसे केला। छिलका फेकते हैं और गूदे का प्रयोग कर लेते हैं। हम यह जानते हैं कि किस फल में छिलका फेंकना है और किसमें बीज फेंकना है। इस तथ्य को हम भली प्रकार जानते हैं। किसी किसी फल को छिलका सहित सेवन करते हैं उसमें छिलका को भी फल के साथ खाते हैं। ऐसे में पूरा का पूरा फल उपयोगी रहता है, अंगूर आदिं। यही स्थिति कर्म की है। किसी किसी कर्म में कुछ विचार नहीं करना पड़ता, क्योंकि वह सम्पूर्णता से शास्त्रसम्मत कर्म होता है। परमात्मा की उपासना का कर्म पूरी तरह से शास्त्रसम्मत कर्म है। यह अंगूर रूपी फल है उसमें छिलके और बीज का कोई विचार ही नहीं करता है। यह सम्पूर्णता से कर्तव्य कर्म है, जिसे मनुष्य को करना चाहिए। ऐसे बहुत से कर्म हैं जो बिना किसी विचार के मनुष्य को करने चाहिए। वही कर्म यदि निष्काम भाव से किये जाए तो वह अकर्म बन जाते हैं।

मनुष्य जब शास्त्रसम्मत कर्मो में स्वार्थ तथा फल की इच्छा से कर्म आरम्भ करता है तो वह कर्म अकर्म नहीं बन पाता है। अर्थात् अकर्म के रूप में परिवर्तित नहीं हो पाता है। जब हम किसी की सहायता उससे किसी लाभ की आकांक्षा से करते हैं तब वह कर्म शास्त्र सम्मत होकर भी अकर्म जैसा स्वरूप नहीं ले पाता है क्योंकि वह स्वार्थ तथा फल इच्छा के भाव को दृष्टि में रखकर किया गया है। इस कारण जो कर्म हम कर रहे हैं वह फल इच्छा तथा स्वार्थपरता से परे और विगत हो यही कर्म में अकर्म को देखना है। कर्म में अकर्म के देख लेने पर स्वार्थपरता स्वतः ही समाप्त हो जाती है। जहां पर स्वार्थपरता और फल की

इच्छा रहती है तो समझना चाहिए कि हम अकर्म की ओर अग्रसर नहीं हो पा रहे हैं। हम छिलका और बीजरहित फल में छिलके और बीज की खोज कर रहे हैं। जो मनुष्य ज्ञानी है वह अपने सम्पूर्ण शास्त्रसम्मत कर्मो को फलेच्छा का त्याग करके उन्हें व्यवहार में लाता है।

कभी कभी मनुष्य अपनी स्वार्थपरता को दृष्टि में रखकर अपनी फलेच्छा की पूर्ति हेतु ही कर्म करता है। इस प्रकार के कर्म को शास्त्र की मान्यता नहीं होती है। वह तो व्यवसाय के रूप में परिवर्तित हो जाता है। कतिपय कारणों से जब उसकी दृष्टि परिवर्तित हो जाती है तो उसका विचार भी बदलता है। वह अपने स्वार्थपरक कर्मो में फल का त्याग करके निष्काम भाव से जब कर्म करता है तो इस स्थिति में वह स्वार्थपरता का त्याग कर देता है। तब उसका कर्म अकर्म के स्वरूप में स्वतः ही परिवर्तित होने लगता है। यह अकर्म में कर्म को देखना है। जब हम किसी भी कर्म को निष्काम भाव से करते हैं तो अकर्म का पालन करते हैं और यही शास्त्रसम्मत कर्मो का विशिष्ट स्वरूप है।

कोई दुष्कर्मी मनुष्य किसी परिवार की हत्या करने को उद्वत हो तो उस समय हमारा कर्तव्य है कि उस दुष्कर्मी व्यक्ति को उसके दुष्कर्म से रोकने का प्रयत्न करें। इस प्रयत्न में हमें उसे मारना भी पड़ सकता है। किसी को मारना तो दुष्कर्म है परन्तु परिस्थितिवश उसे मारना हमारे लिए शास्त्रसम्मत कर्म हो जाता है। इस सम्पूर्ण तथ्य को ज्ञानी जन जानते हैं। वे अकर्म तथा विकर्म में भी कर्म के तत्त्व को समझकर उसका आचरण करते हैं। इस सम्बंध में प्रमुख तथ्य यह है कि मनुष्य को स्वार्थपरता का त्याग करके कर्म का आचरण अवश्यमेव करना चाहिए। जिस कर्म में स्वार्थपरता का त्याग रहता है वह कर्म वास्तविक रूप से अकर्म बन जाता है। समाज में हम यदि लोगों के हित के लिए कर्म करते है परन्तु इस प्रकार के परमार्थ रूपी कर्म में यदि हम अपने स्वार्थ को हल करना चाहते है तो स्वार्थ हल की निकृष्टता में वह कर्म भी विकर्म बन जाता है। वस्तुतः ज्ञानी वही है जो शास्त्रसम्मत कर्मो का आचरण करे और उसमें फल की इच्छा का परित्याग कर दे।

(29) श्रेष्ठजन कर्मफल के आश्रय का त्याग कर देते हैं :–

सामान्य रूप से प्रत्येक मनुष्य अपने प्रत्येक कर्म में कर्मफल का विचार करके ही कर्म करता है। हम जो भी कर्म करते हैं उसमें कर्मफल का आश्रय अवश्य रखते हैं। कर्मफल के विचार को त्यागना सहज नहीं है। जैसे हम कोई नवीन कार्य आरम्भ करना चाहते हैं तो पहले यह विचार करते हैं कि अमुक कार्य करने से हमें क्या लाभ होगा ? लाभ चाहें हो अथवा न हो। यह निश्चित भी नहीं है कि हमने जो विचार किया हो वैसा

लाभ हमें प्राप्त हो। जैसे हम कोई व्यवसाय आरम्भ करते हैं तो उसमें लाभ हानि का अनुमान पहले लगा लेते हैं। यह अनुमान पूर्व में ही हम तय कर लेते हैं, परन्तु यह निश्चित नहीं है कि हमारा अनुमानित लाभ हमें प्राप्त ही हो। इसका एक कारण है कि व्यवसाय करने का अधिकार हमारा है और उस व्यवसायरूपी कर्म के परिणाम का प्रदाता ईश्वर है।

अधिकतर मामलों में हमारे द्वारा विचार किया गया लाभ हमें प्राप्त नहीं होता है। जब हमें हमारे द्वारा विचार किया गया लाभ प्राप्त नहीं हो पाता है तो हमारा फल पर विचार करना अर्थात् लाभ पर विचार करना निरर्थक ही है। जैसे महाभारत का युद्ध आरम्भ होने को था अर्जुन दोनों सेनाओं के मध्य स्थित हुए और उन्होंने अपने स्वजनों को देखकर यह विचार किया कि हम जीतेंगे अथवा वो लोग जीतेंगे, यह निश्चित नहीं है। इस कथन का अभिप्राय है युद्ध आरम्भ होने के पूर्व यह निश्चित नहीं था कि पाण्डवों की जीत होगी अथवा कौरवों की जीत होगी। युद्ध जैसे विशाल कर्म में भी परिणाम की अनिश्चितता थी। जब इतने विशाल कर्म में परिणाम की, फल की निश्चितता नहीं रहती तो छोटे से कर्मो में निश्चित ही परिणाम की अनिश्चितता रहती है।

भगवान श्रीकृष्ण के समझाये जाने पर गीताजी के उपदेश के उपरान्त अर्जुन ने कहा कि मेरा मोह नष्ट हो गया है और स्मृति प्राप्त हो गयी है। यह स्मृति उसके वास्तविक स्वरूप की स्मृति थी। इसे प्राप्त होने पर उसने पूरे मनोयोग से युद्ध किया और महाभारत के युद्ध में उसे पूरी सफलता प्राप्त हुई। जो मनुष्य कर्मफल के आश्रय का त्याग करके कर्तव्य कर्म का आचरण करता है वह निश्चित अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है। कर्मफल का अधिकार परमात्मा के पास है इस कारण जब हम अपने कर्म के फल की आकांक्षा करते हैं तो परमात्मा के अधिकार को प्रभावित करते हैं। मनुष्य को कर्म करने का अधिकार प्राप्त है। इस कारण उसे मात्र कर्म का आचरण करना चाहिए। उसे अधिकार की सीमा में रहकर कर्म करने से फल की प्राप्ति निश्चितरूपेण होती है। जैसे हम कर्म के प्रति जागरूक हैं और कर्म करना चाह रहे हैं। वैसे ही परमात्मा भी अपने कर्म के फल की अधिकार के प्रति जागरूक है और वह कर्मफल का उचित मात्रा में प्रदाता है। इसमें किसी प्रकार का संशय नहीं करना चाहिए।

श्रेष्ठजन मनुष्य के कर्म के अधिकार को तथा परमात्मा के फल के अधिकार के सिद्धान्त को जान लेते हैं। वे अपने कर्मो में फल की आकांक्षा का परित्याग कर देते हैं। वे करने योग्य कर्तव्य कर्मो का आचरण करते हैं तथा उसमें फल की इच्छा का त्याग किये रहते हैं। श्रेष्ठजन नाना प्रकार के कार्य करते हैं। परमार्थ के कार्य, नैतिक सुधार के कार्य,

विकास हेतु अनेक प्रकार के कार्य, शिक्षा के प्रचार प्रसार के कार्य, यज्ञादिक शुभकर्मो के अनुष्ठान के कार्य आदि आदि हमारे द्वारा जो यह कार्य किये जा रहे हैं उससे हमें कुछ लाभ होगा या नहीं होगा इस भाव का परित्याग श्रेष्ठ लोग कर देते हैं।

यहां पर मात्र भावना का त्याग करना है। भावना के त्याग से फल त्याग हो जाता है। यह विचार मन में आये कि हम जो कार्य कर रहे हैं उसका हमें अमुक परिणाम प्राप्त होगा इस भाव का परित्याग कर देना चाहिए। जैसे किसी विद्यालय की स्थापना बालकों की शिक्षा हेतु की गई तो बालकों को शिक्षा प्राप्त होगी। उसमें हम अपने आर्थिक लाभ पर यदि विचार करेंगे तो निकृष्ट भाव है। हम जब यह विचार करते हैं कि विद्यालय के खुलने से हमे बहुत लाभ प्राप्त होगा तो यही भाव फल की आकांक्षा का भाव है, जिसका हमें परित्याग करना चाहिए। हमारे कर्तव्य कर्म का उचित परिणाम तो हमें प्राप्त ही होगा इसमें मात्र हमें विचार का त्याग करना है। जैसे हम कोई आध्यात्मिक अनुष्ठान करते हैं तो उस अनुष्ठान से अनेक मनीषी, संत जन एकत्र होते हैं तथा वे अपने आध्यात्मिक विचारों से लोगों को लाभान्वित करते हैं। इस आध्यात्मिक अनुष्ठान से हमें स्वतः ही यश लाभ होगा। यह यश कीर्ति का कार्य है और यश कीर्ति प्राप्त करने के लिए जब हम कार्य करते हैं तो इसमें फलेच्छा का भाव आ जाता है। हमें यश कीर्ति का लाभ तो होगा ही इस कारण उसपर विचार करना व्यर्थ है। जो वस्तु हमें कर्म के पश्चात् प्राप्त होने वाली है उस पर हमें विचार नहीं करना चाहिए। यहीं फलेच्छा का त्याग है।

(30) परमार्थ के कर्म मनुष्य को पापों से उन्मोचित कर देते हैं :–

कर्म प्रमुखता से दो प्रकार के ही होते हैं। एक स्वार्थपूर्ण कर्म तथा दूसरे परमार्थपूर्ण कर्म। इन दो प्रकार के कर्मो में कर्म की समस्त प्रकार और श्रेणियां समाहित हो जाती हैं। मनुष्य अधिकांश कर्म स्वार्थपूर्ण, स्वार्थपरक भावना से ही करता है। हमारा प्रातः से रात्रि तक जो कार्य होता है और उससे हमें जो कुछ प्राप्त होता है उसके उपभोग का उद्देश्य और भावना अपने लिए तथा अपनों के लिए होती है। आप जहां तक विचार करेंगे वहां तक आप यही विचार करेंगे कि हमारे समस्त कर्मो का जो परिणाम उद्देश्य हमें प्रतीत होता है वह मात्र स्वयं तक ही सीमित हो जाता है।

मनुष्य जो भी कमाता है उसका अधिकाधिक प्रयोग अपने तथा अपनों के लिए करता है। यह भावना त्रुटिपूर्ण है तथा परिवार सुखपूर्वक रहे इसके लिए ही नाना प्रकार की व्यवस्था करना त्रुटिपूर्ण है। आज के आधुनिक समय में हजारों प्रकार की भोग वस्तुऐं हैं जो एकत्र की जा रही हैं। नयी नयी वस्तुऐं एकत्र करने का कार्य चल रहा है। एक नई

वस्तु जैसे ही बाजार में आती है हम उसे प्राप्त करना चाहते हैं अथवा उसका उपयोग अपने लिए करना चाहते हैं। सारा का सारा उपक्रम ही हमारे जीवन में स्वार्थपरतापूर्ण है अर्थात् अपने तथा अपनों के लिए होता है। जीवन भर हम इसी में व्यस्त रहते हैं। एक वृद्ध व्यक्ति यह विचार करता है कि हमने अपने परिवार के लिए क्या–क्या किया है? और क्या क्या करना अवशेष है? हम अपनी मृत्यु के पूर्व इतना अधिक धन कमाये ताकि हमारी अग्रिम कई पीढियां आराम से विलासतापूर्ण जीवन जी सकें। यह भावना मृत्यु तक रहती है। एक वृद्ध मनुष्य भी संसार की अनेक सम्पदा अपने तथा अपने परिवार के लिए एकत्र करने का इच्छुक होता है।

दूसरों के हितार्थ अर्थात् परमार्थ के बारे में हमारा विचार क्यों नहीं आता है ? यह अत्यंत विचारणीय प्रश्न है। हमारा विचार अपने सुख के लिए, अपने परिवार और सम्पर्कित लोगों के सुख के लिए होता है। हम अपनों में तथा अन्य में अंतर रखकर कर्म करते हैं। यह अपनों और दूसरों का विचार हमें परमार्थ के लिए कर्म करने से रोकता है। हम जो भी कर्म अपने लिए करते हैं वह स्वार्थपरक होने के कारण बंधन का हेतु हो जाता है। परमात्मा ने अपने लिए कुछ भी नही किया है। उसने सूर्य, जल, वायु, मौसम, वनस्पतियां, समुद्र, नदी, नाले, पहाड़, पर्वत, सुरम्य वन, अनेक मनोहारी दृश्य परमात्मा ने सभी के लिए बनाये हैं। उसने अपने लिए कुछ नहीं बनाया है। एक से एक बढ़कर स्वादिष्ट फल, खाद्य वस्तुएं, पुष्टकर वनस्पतियां सभी कुछ परमात्मा ने हम सभी के लिए बनाये हैं उनका हम सभी सामान्य रूप से उपभोग करते हैं। नदी का जल सभी के लिए समान रूप से बहता है। वायु सभी के लिए सर्वत्र सुलभ है जिससे जीवन चलता है। यह सब परमार्थ के कार्य परमात्मा ने हम सभी के लिए किये हैं। उसका एक ही उद्देश्य है कि किसी भी प्रकार मानव का जीवन सुखमय हो। मानव जीवन की सुखमयता हेतु परमात्मा की एक समान वृहद् व्यवस्था ही परमार्थ के कार्य सुन्दरतम उदाहरण है। परमार्थ का अर्थ हमें परमात्मा के कार्यो से समझना चाहिए और इसी से हमें परमार्थ शब्द की व्याख्या जान लेनी चाहिए।

परमात्मा ने जो कार्य किये हैं वे सबके सब परमार्थ के कार्य किये हैं उनको हम देखकर समझकर जान सकते हैं कि क्या हमने अपने जीवन में परमात्मा की तरह से कोई कार्य किया है? उसके कार्यो की सादृश्यता से किसी कर्म पर क्या हमने कभी विचार किया है ? क्या हमने अपने जीवन में किसी भी ऐसे कार्य पर विचार किया है ? जो परमात्मा के कार्य की तरह सबके लि ए उपयोगी हो। हम जब विचार करते है तो पाते है कि हमने जीवन में परमात्मा के परमार्थ कार्यो के समान कोई न तो कार्य किया है और न ही ऐसे कार्य के विषय में विचार किया है। तो हम यह कहना चाहेंगे कि जंगल में रहने वाला एक पशु भी अपने तथा अपनों के लिए भोजन की, रहने की तथा जीवन के लिए अनिवार्य

वस्तुओं की सामग्री की व्यवस्था कर लेता है। कुछ हमारा भी कार्य इसी तरह से जंगल के पशु की तरह से है। हम चिड़ियों की तरह अपने तथा अपने बच्चों के लिए खाद्य सामग्री और जीवन की आवश्यक सामग्री एकत्र करने का प्रयास करते हैं। कुछ अधिक कमा लेने पर अपने तथा अपनों के लिए विलासितापूर्ण जीवन जीने का स्वयं भी प्रयास करते हैं तथा उन्हें भी विलासितापूर्ण जीवन की सुविधाऐं उपलब्ध कराते हैं। यही हमारी दिनचर्या है और हमारे जीवन के कृतित्व का दर्शन है।

पाप तथा पुण्य की क्या परिभाषा है? इसे हम किस प्रकार समझ सकते हैं? परमात्मा ने जो वस्तुऐं सभी के लिए समान रूप से उपलब्ध करायी हैं। जब उन वस्तुओं को जो दूसरों के अधिकार की हैं उन्हें छीनकर हम उनका उपभोग स्वयं के लिए करना चाहते हैं तो यही पाप कहलाता है। दूसरों के अधिकार की वस्तुओं को छीनकर हम सुखी होना चाह रहे हैं यह कदापि नहीं हो सकता है। हम दूसरों की वस्तुओं को, दूसरे के अधिकारों को छीनकर जब हम अपना तथा अपनों का पेट भरना चाहते हैं तो इसी को पाप कहा जाता है और इसे ही पाप का स्वरूप जानना चाहिए। तथा हम अपने अधिकार की वस्तुओं में से थोड़ी भी वस्तुऐं अन्य लोगों को उपभोग के लिए देना चाहते हैं तो यह पुण्य के स्वरूप में बदलता है। हम जितना दूसरों को स्वार्थपरक भावना का परित्याग करके सहायता करना चाहेंगे तो वही पुण्य के रूप में परिवर्तित हो जाता है। यही पाप पुण्य की परिभाषा है, जिस पर हमें विचार करना चाहिए। पाप दूसरों के अधिकारों को छीनने तथा दूसरों के अधिकारों का उपभोग करने से आरम्भ हो जाता है। जितना ही हम दूसरों के अधिकार को छीनते हैं और उनका उपभोग स्वयं के लिए करते हैं उतना ही पाप बढ़ता जाता है। यह स्वार्थपरक कार्य है तथा पाप का साक्षात् स्वरूप है। अपने पास जो कमाया हुआ है, संचित धन है और जो हम कमा रहे है वह भी जितनी मात्रा में दूसरों के उपयोग के लिए हम देते हैं उतनी ही मात्रा में पुण्य का अर्जन होता है। जो मनुष्य इस प्रकार परमार्थ के कर्म करता है उसके समस्त पाप स्वतः ही भस्म हो जाते हैं और वे पापों से पूरी तरह से उन्मोचित हो जाते हैं।

(31) आत्मरत, आत्मसंतुष्ट,आत्मतृप्त मनुष्य हेतु कोई कर्तव्यकर्म नहीं हैः–

अपने स्वप्न की अवस्था का अनुमान किया होगा। स्वप्न काल में हम सूक्ष्म शरीर से नाना प्रकार की वस्तुऐं और स्थितियां देख लेते हैं जो हमारी कल्पना में नहीं होती हैं वे भी देख लेते हैं। कभी आश्चर्यजनकरूप से उन वस्तुओं का संयोग हो जाता है जो हमारी संज्ञानता में कभी नहीं आयी हैं। दुःख तथा सुख का जो मिश्रित स्वरूप है वह भी हम देखते हैं। नाना प्रकार के दृश्यों को हम जीवन भर देखते रहे हैं और देखते रहेंगे। शायद

ही कोई ऐसा दिन आये जब हम स्वप्न न देखते हो। कभी कभी हम दिन में भी स्वप्न देखते हैं और रात्रि में तो कभी कभी अधिकतम समय तक स्वप्न देखते हैं। जागने पर कहते हैं कि हमने आज बहुत स्वप्न देखे। हम जागकर भी कभी कभी स्वप्नों के संसार में खो जाते हैं और उस पर विचार करते रहते हैं। स्वप्न में हम जो कुछ भी देखते हैं वह जागने पर अर्थात् जागृत अवस्था में हमे प्रतीत नहीं होता। सब कुछ यथार्थ में नहीं होता है जो भी क्रियाऐं स्वप्न में होती हैं वे सभी जागने पर अस्तित्त्वविहीन हो जाती हैं। अर्थात् उसका अस्तित्त्व रहता नहीं है। जैसे हम स्वप्न में कोई वस्तु लावें या बनावें तो वस्तुतः जागने पर वह वस्तु हमें प्राप्त नहीं होती है। वह स्वतः ही समाप्त हो जाती है। यही स्वप्नावस्था की वास्तविकता है।

यह सम्पूर्ण जगत भी स्वप्न की तरह से ही है। हम जीवन भर कर्म करते हैं और अंत में मृत्यु को प्राप्त हो जाते हैं। हम जो कुछ कर पाते हैं, जो कुछ बन पाते हैं वह सबका सब मृत्यु के पश्चात् हमसे विलग हो जाता है, छूट जाता है। जैसे हम स्वप्न में भी कुछ वस्तुओं का निर्माण कर लेते हैं वैसे ही जीवन में भी कुछ वस्तुएं बना लेते हैं। घर, सम्बंध, सम्पर्क, बहुत कुछ बन जाता है सम्पूर्ण जीवन में। परन्तु अंत में वह स्वप्न की तरह से ही समाप्त हो जाता है। वह हमारा बनाया हुआ सब समाप्त हो जाता है। इस कारण इस जगत को भी स्वप्न की तरह माना जाता है और कहा जाता है कि यह जगत स्वप्नवत् है। एक सामान्य मनुष्य यह तथ्य अनुभव नहीं करता है और जगत की इस वास्तविकता को जो समझ जाते हैं वे जगत को स्वप्न की तरह व्यवहार करते हैं तथा परमात्मा के स्मरण में डूब जाते हैं। हम सब अर्थात् एक सामान्य व्यक्ति जगत में डूबता है और जगत के बारे में निरन्तर विचार करता रहता है। जगत की, जीवन की यथार्थता को समझने वाला मनुष्य परमात्मा में डूबता है और परमात्म तत्त्व का अनुभव कर लेता है जो परमात्मा के तत्त्व का अनुभव कर लेते हैं वे निम्नांकित तीन स्थितियों में रहते हैं।

(क) आत्मरत स्थिति :–

एक सामान्य व्यक्ति जगत में निरन्तर रमा रहता है। प्रातः जागता है जगत के क्रियाकलापों के बारे में विचार करता है। सोने तक उसके मन और बुद्धि में संसार रहता है। संसार समाया रहता है, क्योंकि वह उसमें रम रहा है। रमण कर रहा है। संसार उससे छूटता नहीं। जगत के क्रियाकलाप उससे पृथक् नहीं हो पाते हैं। इसके प्रतिकूल परमात्मा का सर्वत्र अनुभव करने वाला परमात्मा में रमण करता है। उसके लिए जगत के जो क्रियाकलाप हैं उनका कोई मूल्य नही है। जैसे युवावस्था आ जाने पर हम बालकों के खेलों में कोई रूचि नहीं रखते हैं और बालकों की खेल सामग्री को अपने लिए बेकार

निरर्थक और अनुपयोगी मान लेते हैं। उसी प्रकार एक तत्त्ववेत्ता मनुष्य जगत की समस्त वस्तुओं को अपने लिए अनुपयोगी और निरर्थक समझ कर उनकी ओर नहीं देखता है और उसमें रमता नहीं है। अर्थात् उसमें रमण नहीं करता है। उनका रमना परमात्मा में होता है। वे संसार में रमण करने के आकांक्षी नहीं होते हैं। उनमें संसार की वस्तुओं में रमने की भावना का अभाव हो जाता है। ऐसे आत्मरत व्यक्तियों के लिए कोई कर्तव्य कर्म नहीं रह जाता है, क्योंकि संसार उनके लिए अनुपयोगी हो जाता है। महत्वहीन हो जाता है। संसार से जब तक स्वार्थ रहता है संसार की वस्तुओं से जब तक सुख प्राप्त करने की आकांक्षा और भावना रहती है तब तक यह स्थिति कदापि प्राप्त नहीं होती है और जब संसार से सुख लेने की भावना का समापन हो जाता है तब परमात्मा में रमण होता है। यह आत्मरत स्थिति सिद्धजनों की होती है।

(ख) आत्मसंतुष्ट स्थिति :–

कभी–कभी जब हममे संसार की कुछ वस्तुओं और स्थिति को प्राप्त करके संतुष्टि का भाव आता है तो हम अपने को संतुष्ट अनुभव करते हैं। जैसे हम 100 रूपये की आशा करें और हमें एक हजार रूपये प्राप्त हो जाऐ तो हमारी आकांक्षा से कई गुना प्राप्त हो जाने पर हममें स्वतः ही संतुष्टि का भाव आ जाता है। जो हमारी आकांक्षा है उससे कई गुना प्राप्त होते ही हम संतुष्ट हुए से प्रतीत होते हैं। आकांक्षा की सीमा तक प्राप्त होने पर भी संतुष्ट हो जाते हैं और आकांक्षा की सीमा से कई गुना अधिक प्राप्त हो जाने पर हम अतिशय संतुष्टि का आभास करते हैं। यह सांसारिक संतुष्टता रहती है जिससे एक बार संतुष्ट हो जाने पर पुनः उसी वस्तु की अकांक्षा होती है, जिसके लिए हमने संतुष्टि का भाव रखा था। जैसे हमने एक बार 100 रूपये की आशा की ओर वह हमें प्राप्त हो गया तो क्षणिक संतुष्टि प्राप्त हो जाती है। परन्तु जो परमात्मा में रम जाता है, रमण करता है वह संसार की तरह से संतुष्ट नहीं होता है, क्योंकि जगत की सर्वाधिक मूल्यवान वस्तु उसके पास हो जाती है। परमात्मा को प्राप्त करके जो संतुष्टि होती है वह जगत की संतुष्टि से पृथक् प्रकार की है। परमात्मा जगत की तरह से जगत की वस्तुओं की तरह से मूल्यवान नहीं है। वह सर्वाधिक मूल्यवान है जिसे प्राप्त कर लेने पर अन्य कुछ प्राप्त करना अवशेष नही रह जाता है। इसी कारण मनुष्य आत्मसंतुष्ट हो जाता है। ऐसे आत्मसंतुष्ट व्यक्ति के लिए कोई सांसारिक कार्य भी अवशेष नहीं रहता। हमारे कर्तव्य कर्मो की सीमा सांसारिक वस्तुओं तक ही है, परन्तु परमात्मा को प्राप्त पुरूषों की संतुष्टि पृथक् प्रकार की होती है। वह आत्मसंतुष्ट होकर संसार के कर्तव्य कर्मो से पृथक् हो जाता है और ऐसे आत्मसंतुष्ट के लिए कोई कर्तव्य कर्म अवशेष नहीं रहता।

(ग) आत्मतृप्त स्थिति :–

जगत में हम रहते हैं और जगत के क्रियाकलापों में भी कभी कभी तृप्ति का अनुभव करते हैं। जैसे हम भोजन करते हैं तो भूख समाप्त होने तक भोजन करते हैं। भूख समाप्त होने पर हम अपने को तृप्त अनुभव करते हैं। यह भोजन की तृप्ति है। जैसे हम प्यास लगने पर जल ग्रहण करते हैं और प्यास के समाप्त होने तक हम जल पीते हैं। हम जान लेते हैं कि हमारी पिपासा समाप्त हो गई और हम तृप्त हो गये। संसार के प्रत्येक विषय में इसी प्रकार हम तृप्त होते हैं। पुनः कुछ समय पश्चात् अतृप्त हो जाते हैं। संसार के समग्र विषयों की ऐसी ही स्थिति है। तृप्ति क्षणिक रहती है, ठहरती नहीं है, क्योंकि संसार में ठहराव नहीं है। संसार स्वयं ही परिवर्तनशील है। विकारयुक्त है। संसार में रहकर जो मनुष्य परमात्मा का दर्शन कर लेता है अर्थात् ब्रह्म की अनुभूति कर लेता है वह तृप्त हो जाता है, उसे आत्मतृप्त कहते हैं। यह वह तृप्ति है जो कभी अतृप्ति नहीं होती। ऐसे मनुष्य के लिए संसार का कोई कर्तव्य कर्म रहता नहीं है। हम सब तृप्ति के लिए ही कार्य करते हैं। एक बार भोजन कर लेने पर पुनः उसकी आवश्यकता प्रतीत होती है। परन्तु परमात्मा के आभास से आत्मतृप्त मनुष्य कुछ नहीं करता है वह सर्वप्रकारेण संतुष्ट होकर तृप्ति का आभास करता है।

(32) श्रेष्ठजनों को लोकसंग्रह हेतु कर्म करना चाहिए :–

नाटक में प्रत्येक पात्र की भूमिका होती है। जैसे कोई राजा बनता है, कोई मंत्री बन जाता है, तो कोई सेवक बनता है। कोई विदूषक बनता है और अनेक लोग नर्तकी आदि बन बन कर सम्पूर्ण नाटक को सही प्रकर से मंचित करते हैं। जो मनुष्य राजा की भूमिका में होता है वह राजा के कार्यकलापों को मंच पर प्रस्तुत करता है और दर्शक उसके द्वारा कृत भूमिका का अवलोकन करते हैं तथा उसकी समीक्षा करते हैं। यदि राजा की भूमिका उचित रूप से की गई है, निभाई गई है तो उसकी प्रशंसा होती है। वह भूमिका अनुकरणीय होती है। अन्य भूमिकाऐं भी यदि सही ढंग से मंचित की गई हैं तो उनकी प्रशंसा होती है तथा उनसे लोग सीख लेते हैं और उनका अनुकरण करते हैं। यह एक व्यवहारिक तथ्य है। चलचित्र जगत में भी कुछ ऐसी ही प्रक्रिया है जो भूमिकाऐं निभाई जाती हैं उन सभी का मूल्यांकन होता है। उनकी समीक्षा होती है। दर्शक समाज उन्हें अपनी अपनी दृष्टि से देखता है। पूरी फिल्म में अलग–अलग प्रकृति के लोग अपने पात्रों को तलाशते हैं, खोजते हैं और वे उनकी समीक्षा भी करते हैं।

यह जगत भी रंग मच की तरह से है। चलचित्र की तरह से है। प्रत्येक व्यक्ति की समीक्षा होती है वह जो कुछ भी कर रहा है उसको समाज दर्शक के रूप में देखता है। सामान्य व्यक्तियों को तो सामान्य रूप से देखा जाता है। परन्तु विशिष्ट लोगों के कार्यो की समीक्षा समाज करता है। जैसे अध्यात्म के क्षेत्र में महर्षि वेदव्यास, आद्य शंकराचार्य महर्षि अरविन्द, करपात्री जी महराज, स्वामी विवेकानन्द आदि आदि कुछ विशिष्ट नाम हैं। क्रान्ति के क्षेत्र में चन्द्रशेखर आजाद, भगत सिंह आदि आदि अनेकों नाम हैं। शान्ति के क्षेत्र में महात्मा गांधी, विनोबाभावे जैसे लोग हैं। प्रत्येक क्षेत्र में लोगों के नाम हैं। ईमानदारी के क्षेत्र में पूर्व प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री का नाम आता है समाज के लोग उनसे सीख लेते हैं और उनके द्वारा किये गए कर्मो का आचरण करना चाहते हैं। विशिष्ट लोगों का आचरण प्रत्येक व्यक्ति करना चाहता हैं। विशिष्ट लोगों का जिन्होंने अपना जीवन निष्काम भाव से सेवा में समर्पित किया है उन्हें श्रेष्ठ पुरूष कहा जाता है। उनके प्रत्येक कार्यकलापों की समीक्षा और चर्चा होती है। राष्ट्र उन्हें अपना प्रेरणास्रोत मानता है। सुभाष चन्द्र बोस को कौन नहीं जानता है? उनके कार्यो की चर्चा आज भी होती है। इसी प्रकार श्रेष्ठजनों के कार्यकलापों को देखकर ही अन्य लोग आचरण करते हैं। इस कारण जो भी अपने समय के श्रेष्ठ पुरूष हों उन्हें लोक संग्रह के लिए आचरण करना चाहिए। जैसा जैसा वे करते हैं वह सबका सब लोक संग्रह के रूप में उपस्थित रहता है और वैसा वैसा आचरण अन्य लोग भी करते हैं। श्रेष्ठजनों को लोक संग्रह हेतु श्रेष्ठ कर्म करना उनका कर्तव्य कर्म है।

(33) कर्म बंधन चार स्थितियों में नहीं होता है :–

जब तक मनुष्य स्वार्थपरता से कर्म करता है तब तक उसका प्रत्येक कर्म बंधन का कारण कहा जाता है। हम स्वार्थी भावना से जो कर्म करते हैं उससे हम बधते जाते हैं। हम जो अपने स्वयं के लिए करते हैं वहीं हमारे बंधन का हेतु है। प्रत्येक साधक, श्रेष्ठ पुरूष यह चाहता है कि उसका बंधन समाप्त हो, क्योंकि कर्मबंधन के समाप्त हुए बिना मनुष्य कदापि मुक्त नहीं हो सकता है। शास्त्रों में कर्मबंधन न हो इसके लिए चार विशिष्ट उपाय सुझाऐ हैं। श्रेष्ठजनों को, मुक्ति की आशा रखने वालों को इसका अनुकरण करना चाहिए। वे स्थितियां है–

(एक) जो प्राप्त हो उसमें संतुष्ट रहना :–

हमें परमात्मा की व्यवस्था में जो कुछ भी प्राप्त है उसमें हमें संतुष्ट रहना चाहिए। हम जब उसमें संतुष्ट नही रहते हैं तो नाना प्रकार के ऐसे कर्मो का सम्पादन करते हैं जो

हमारे द्वारा नहीं किये जाने चाहिए। पहले तो यह विचार रहता है कि हमें क्या प्राप्त नहीं है?चूंकि अप्राप्त वस्तुओं की श्रृंखला अंत तक जाती है। एक के पश्चात् दूसरी आवश्यकता प्रकट हो जाती है इस कारण हम अप्राप्त वस्तुओं की प्राप्ति का प्रयास करते रहते हैं। यह प्रयास कुत्सित भी हो जाते हैं। अप्राप्त को प्राप्त करने में हमारा समग्र जीवन ही गायब हो जाता है। इस कारण हमें कर्म बंधन होता है। हमें जो प्राप्त है उसमें प्रसन्न चित्त हो जाना एक विशिष्ट स्थिति है। जो आवास है वह ठीक है। जो परिवार हमें संयोगवश प्राप्त हुआ है वह ठीक है। जो वस्तुऐं जीवननिर्वाह हेतु मिली हुई है वह ठीक हैं। जो हमारे सम्पर्कित लोग हैं वह ठीक हैं। जो भी है वह सब ठीक है। यह विचार जब दृढ़ हो जाता है तो वह साधक कोई अनावश्यक प्रयास नहीं करता है। जो हमें प्राप्त है वह जीवनयापन हेतु पर्याप्त है। यह भाव संतुष्टि का भाव है। इस प्रकरण में एक तथ्य हमें निश्चित रूप से समझना चाहिए कि हम संसार में अपने कर्तव्य कर्मो का आचरण निष्काम भाव से करें तो हमें समग्र अप्राप्त वस्तुऐं स्वतः ही प्राप्त हो जाती हैं। हम जब प्राप्त वस्तुओं में और स्थितियों में संतुष्ट रहकर भगवान का स्मरण करते हैं तो कभी भी नवीन कर्म न होने के कारण कर्म का बंधन नहीं होता है।

(दो) सुख दुख से रहित हो जाना :–

अनुकूल स्थितियों में सुख की अनुभूति होती है और प्रतिकूलता में हमें दुःख का आभास रहता है। यह सामान्य मनुष्य का धर्म है। हम सभी दुःख में शोक के भाव से भर जाते हैं और सुखी रहने पर प्रसन्न रहते हैं। दुःख प्राप्त होने पर सुख की प्राप्ति का यत्न करके कर्म करते हैं। जो अनुकूलता आयी है वह हटे अर्थात् दुःख समाप्त हो यह भाव रखकर नाना प्रकार के कर्म करते हैं। येन केन प्रकारेण दुःखों से निवृत्ति हो इसके लिए हम नाना प्रकार के कर्म करते हैं। यही कर्म बंधन का कारण है। इन कर्मो के करने से हम देखते हैं कि कभी दुःख का निवारण होता है और कभी दुःख और बढ़ जाते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि हम जो कर्म कर रहे हैं उससे दुःखों की निवृत्ति हो जाए और सुख प्राप्त हो जाए। संयोगवश सुखों के न मिलने पर हम नाना प्रकार के कर्म करते रहते हैं। यही कर्मबंधन हो जाता है। जो साधक यह समझता है सुख और दुख हमारे कर्मो के फलस्वरूप प्राप्त हुए हैं तो वह दुःखों से दुःखी नहीं होता है और न ही सुखों के आने पर उसमें प्रसन्नता का भाव आता है। ऐसी स्थिति प्राप्त कर लेने पर मनुष्य को कर्मबंधन नहीं होता है।

(तीन) इर्ष्यारहित हो जाना :–

मनुष्य के मन में इर्ष्या रहती है, हम दूसरों के प्रति अवश्य ही इर्ष्या रखते हैं। बाल्यावस्था से ही मनुष्य के मन में इर्ष्या का प्रादुर्भाव हो जाता है। बालक जब दूसरे बालकों के साथ खेलता है तो इर्ष्या के कारण ही अन्य बालकों के खेल को बिगाड़ता है। एक बालक दूसरे बालक के अच्छे खिलौनों को छीनने का प्रयास करता है। यह क्रिया इर्ष्या के कारण ही होती है। जैसे जैसे बालक किशोरावस्था की ओर बढ़ता है। उसका इर्ष्या भाव भी समृद्ध होता जाता है। एक युवा इर्ष्या भाव से आवृत हो जाता है। इर्ष्या कई कारणों से होती है और इर्ष्या से आवृत मनुष्य नाना प्रकार की कुचेष्टाऐं भी करता है। जो उसके कर्म बंधन का कारण होती है। जब मनुष्य साधना की ओर बढ़ता है तो वह इर्ष्या का धीरे–धीरे त्याग करता है, क्योंकि वह मनुष्य की प्रवृत्ति का, कार्य के कारण और व्यवहार को जान जाता है। जब तक तक मनुष्य कर्म के कारण को नहीं जानता है तब तक वह इर्ष्याग्रस्त रहता है और नाना प्रकार के कर्म करता रहता है। एक इर्ष्यारहित साधक नाना प्रकार के कर्मो का त्याग कर देता है तथा कर्म के बंधन से स्वतः ही मुक्त हो जाता है।

(चार) सिद्धि और असिद्धि में समभाव हो जाना :–

हममें से प्रत्येक मनुष्य अपने कार्य की सिद्धि चाहता है। कोई भी व्यक्ति ऐसा नहीं होगा जो अपने कर्म की सिद्धि न चाहता हो। यहां तक कि कुमार्गी लोग दुष्कर्मो के आचरण में अपने कर्मो की सिद्धि हेतु देवी देवताओं की उपासना करते देखे जाते हैं। क्योंकि वे भी अपने दुष्कृत्यों की सिद्धि चाहते हैं। हमारे सिद्धि चाहने पर हमें कर्मो की सिद्धि प्राप्त नहीं हो सकती है। यह निश्चित है। यदि ऐसा होता तो प्रत्येक मनुष्य अपने कार्य को करके उससे सिद्धि प्राप्त कर लेता। इससे स्पष्ट है कि हमारे चाहने से हमें सिद्धि प्राप्त नहीं होती है। वह संयोगवश ही प्राप्त होती है। इसी को कर्मफल कहा जाता है। साधक लोग निष्काम भाव से कर्म करते हैं और फल की इच्छा का त्याग कर देते हैं उन्हें चाहें सिद्धि प्राप्त हो अथवा न हो वे समभाव से ही कर्म करते रहते हैं। कर्म की सिद्धि हेतु जब हम ऐसे कर्म करते हैं जो हमें नहीं करने चाहिए तो कर्मबंधन होता है। जब मनुष्य सिद्धि असिद्धि में समभाव से कर्म करता है तो वह कर्म बंधन से मुक्त हो जाता है।

(34) परमात्मा पांच कार्य नहीं करता है :–

मनुष्य जो भी कार्य करता है उसकी सिद्धि के पांच हेतु पूर्व में कहे गए हैं। इसी प्रकार परमात्मा पांच तथ्यों को ग्रहण नहीं करता है और उदासीनवत् भाव से उपस्थित रहता है। मनुष्य शरीर में तथा प्राणिमात्र के शरीर में उसकी नित्य उपस्थिति रहती है।

परंतु परमात्मा मानव शरीर में नित्य शरीर में उपस्थित रहते हुए भी पूर्ण उदासीनवत् भाव से स्थित रहकर मानव द्वारा संपादित किए गए कर्मों को देखता रहता है। यह एक अत्यंत आश्चर्यजनक तथ्य है। शास्त्रों ने यह स्पष्ट किया है कि परमात्मा की उदासीनता अत्यंत विशिष्ट है। इसलिए वह पांच तथ्यों को ग्रहण नहीं करता है। यह विशेष बात है कि हम किसी स्थान पर यदि उपस्थित रहे तो वहां के वातावरण, परिस्थिति, घटना आदि का हम पर प्रभाव अवश्य पड़ता है परंतु परमात्मा की मानव शरीर में नित्य उपस्थिति होने के बावजूद वह असंख्य मानव की असंख्य क्रियाओं को उदासीनवत् भाव से देखता है जैसा कि एक मनुष्य के लिए कर पाना असंभव है। वे क्या कार्य हैं जिनका ग्रहण परमात्मा नहीं करता है। उसे समझना हमारे लिए अत्यावश्यक और अनिवार्य है–

(क) किसी के शुभ कर्म को ग्रहण नहीं करता–

मनुष्य जो भी शुभ कर्म करता है वह मनुष्य के पक्ष में रहता है। परमात्मा की मानव शरीर में उपस्थित होने पर भी मानव के द्वारा संपादित किए जाने वाले शुभ कर्मों का उससे कोई लेना–देना नहीं होता है। मानव जो कुछ भी शुभ कर्म करता है वह मानव के पक्ष में ही रहते हैं। जैसे खेल में निर्णय करने वाला मनुष्य संपूर्ण खेल को उदासीनवत् भाव से देखता है। चाहें किसी पक्ष की हार हो अथवा जीत हो, उसे हार–जीत से कोई मतलब नहीं होता है। इसी प्रकार परमात्मा भी समस्त जगत में संपूर्ण मनुष्यों के कार्यकलापों को उदासीनवत् भाव से देखता है और मनुष्य के द्वारा जो भी शुभ कर्म किए जाते हैं, वे उस मनुष्य के पुण्यरूपी खाते में पहुंच जाते हैं। इस प्रकार परमात्मा मनुष्य के द्वारा संपादित किए जाने वाले शुभ कर्मों को ग्रहण नहीं करता।

(ख) किसी के पाप कर्म को भी ग्रहण नहीं करता है–

समाज में आपने अनेक मनुष्य को अनेक प्रकार के अवैधानिक, असमाजिक दुष्कर्मों का संपादन करते हुए देखा होगा। अनेक मनुष्य तमोगुण से आवृत होकर अनेक प्रकार के दुष्कर्म करते रहते हैं जिन्हें पापकर्म भी कहा जाता है। जो मनुष्य जिन पापकर्मों का संपादन करता है वे उसी मनुष्य के खाते में संचित हो जाते हैं। परमात्मा दुष्कर्मी मनुष्य के द्वारा संपादित किए जाने वाले दुष्कर्मों को भी उदासीनवत् भाव से देखता रहता है तथा वह उन पापकर्मों को ग्रहण नहीं करता है जो दुष्कर्मी मनुष्य के द्वार किए जाते हैं। उन दुष्कर्मों का परिणाम भी पाप करने वाले मनुष्यों को ही भुगतना पड़ता है परंतु यदि दुष्कर्मी मनुष्य यह निश्चित कर ले कि भविष्य में हम दुष्कर्मों का संपादन नहीं करेंगे और इसी भाव से परमात्मा के समक्ष अपने दुष्कर्मो का प्रायश्चित कर ले तो उसे पापकर्मों के परिणाम

से परमात्मा मुक्त भी कर देता है, परंतु यह स्थिति अत्यंत विलक्षण है और सहजता से प्राप्त नहीं होती। इस प्रकार परमात्मा किसी भी दुष्कर्मी मनुष्य के द्वारा संपादित किए गए दुष्कर्मों को भी ग्रहण नहीं करता है।

(ग) मनुष्य के कर्तापन को ग्रहण नहीं करता है–

परमात्मा ने मनुष्य को बुद्धिरूपी तत्त्व प्रदान किया है। परमात्मा की जो अपरा प्रकृति है उसका एक विशिष्ट तत्त्व बुद्धि है। इस बुद्धिरूपी तत्त्व की शक्ति को विवेक कहते हैं। बुद्धि की शक्ति को कार्य के विनिश्चय का अधिकार है। जैसे मनुष्य जब चलता है तो बुद्धि उसके चलने की क्रिया का विनिश्चय करती है। इसी प्रकार मानव शरीर के द्वारा जो भी कार्य होते हैं उन सभी का विनिश्चिय बुद्धि के द्वारा ही होता है। हम यदि कहीं जा रहे हों तो हमें अभीष्ट स्थान तक पहुंचाने में बुद्धि ही सहयोग करती है, परंतु वस्तुतः मनुष्य कोई कार्य नहीं करता है। कार्य प्रकृतिजन्य गुण करते हैं। वैसे मनुष्य कार्य करते हुए प्रतीत होता है, इसलिए वह प्रत्येक क्रिया का कर्ता भी है। मनुष्य जो कुछ भी अच्छे–बुरे कार्य करता है इसलिए उसमें कर्तापन का भाव आ जाता है। वस्तुतः परमात्मा मानव शरीर में स्थित रहता है, इसलिए मनुष्य नाना प्रकार की क्रियाओं को करने में सक्षम हो पाता है, परंतु वह मानव शरीर में स्थित होते हुए भी अपने को कर्ता नहीं मानता। इसलिए परमात्मा कर्तापन के भाव से सदैव मुक्त रहता है। इसी भाव से यह कहा जाता है कि परमात्मा मनुष्य के कर्तापन को ग्रहण नहीं करता है।

(घ) कर्तापन के कार्य की रचना भी नहीं करता :–

कर्तापन के भाव से प्रत्येक मनुष्य जो कुछ भी शुभ और अशुभ कर्म करता है वह अपने विवेक से ही करता है। अपने विवेक से कर्मो का सम्पादन किये जाने के कारण मनुष्य अपने को उन कर्मो का कर्ता मानता है। इस प्रकार विवेक से मनुष्य अनेक प्रकार की सांसारिक चेष्टाऐं किया करता है। उन चेष्टाओं को परमात्मा न तो ग्रहण करता है और न ही उनकी रचना करता है जैसे हम कभी यह विचार करते हैं कि हमारे प्रत्येक कार्य में परमात्मा की प्रेरणा होती है। परन्तु यह सिद्धान्त नितान्त भ्रमपूर्ण है। परमात्मा ने हमें बुद्धि प्रदान की है जिससे हम कर्मो का सम्पादन स्वयं ही करते हैं। शुभ अशुभ जो भी कर्म हम रचते हैं और उनका सम्पादन करते हैं। उनमें परमात्मा की प्रेरणा नहीं होती है वरन् हमारी बुद्धि की प्रेरणा से अनेक प्रकार की चेष्टाऐं मूर्तरूप ले लेती हैं। साधना के उच्च स्तर पर जाकर मनुष्य को परमात्मा की ओर से कुछ विशिष्ट संदेश अवश्य प्राप्त होते हैं। यह स्थिति पृथक् है और विशिष्ट है। इस प्रकार परमात्मा कर्तापन के कार्य की रचना भी नहीं करता है।

(ङ) परमात्मा कर्मफल के संयोग की रचना भी नहीं करता :–

मनुष्य जो भी कर्म करता है उसका परिणाम उसे अवश्यमेव प्राप्त होता है। ऐसा नहीं है कि हमारे किसी कर्म का परिणाम हमें प्राप्त न हो। हम जो भी कर्म करते हैं उसका एक निश्चित परिणाम होता है। वह परिणाम क्या होगा ? इसको जाना नहीं जा सकता है। वस्तुतः कर्मो के फल का प्रकटीकरण परमात्मा की व्यवस्था में होता है परन्तु हम जो कर्म करते हैं उसके फल की रचना वह परमात्मा नहीं करता है। यह एक विशिष्ट बात है, विलक्षण तथ्य है कि हमें कर्मफल प्राप्त भी होते हैं और कर्मफल के संयोग परमात्मा के द्वारा रचे नहीं जाते हैं। हमें कर्मो का फल मिलता है परन्तु उनका आधार हमारे कर्म ही हैं। इस कारण यह कहा जाता है कि परमात्मा कर्मफल के संयोग की रचना नहीं करता है। कर्मफल परमात्मा की ओर से आते हैं। वे हमारे कर्मो के आधार पर बनाये जाते है। इसलिए यह कहा जाता है कि कर्मफलों का संयोग है वह परमात्मा के द्वारा रचित नहीं है।

(35) मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है :–

मनुष्य जो भी कर्म करता है उसका परिणाम अवश्य होता है। इस तथ्य को पूर्व में भी वर्णित किया जा चुका है। शुभ कर्मो का शुभ परिणाम और अशुभ कर्मो का अशुभ परिणाम तथा शुभाशुभ कर्मो का शुभाशुभ परिणाम अवश्य होता है। हम आज जो कर्म करते हैं वे कल हमारा भाग्य बनकर प्रकट हो जाते हैं। यह निश्चित परमात्मा की व्यवस्था है। इस व्यवस्था को मानकर हमें अपने अच्छे भाग्य निर्माण हेतु शुभ कर्म ही करने चाहिए। ताकि हमारा कल अच्छा हो। जिसे हम भाग्य कहते हैं, वह सौभाग्य कहा जाएगा। यदि हम अच्छी स्थिति में जीवन यापन कर रहे हैं तो हमें दुष्कर्मो के आचरण का प्रयास कदापि नहीं करना चाहिए। हमारी अच्छी स्थिति हमारे सत्कर्मो के कारण प्राप्त हुई है। हमारी अच्छी स्थिति को अनुकूल स्थिति को ही भाग्य कहा जाता है। यदि हमारी सामाजिक, पारिवारिक स्थितियां अनुकूल हैं तो भाग्य अच्छा समझना चाहिए। जो अनुकूल स्थितियां हमें प्राप्त हुई हैं वह हमारे संचित कर्मो का परिणाम हैं। चाहें वह पूर्व जन्म के संचित कर्म हो अथवा इस जन्म के संचित कर्म हों वे फल देने को प्रस्तुत हो गए हैं। फल देने को प्रस्तुत हैं। इसलिए हम अपने को भाग्यशाली आभास करते हैं।

अधिकांश मनुष्यों की परिस्थितियां प्रतिकूल हो जाती हैं तो साधारणतया यह कहा जाता है कि हमारा भाग्य ठीक नहीं है। अर्थात् भाग्य ठीक कार्य नहीं कर रहा है अथवा यह हमारा दुर्भाग्य है। प्रतिकूलता का अर्थ दुर्भाग्य कहा जाता है। जब हमारे संचित दुष्कर्म फल देने को प्रस्तुत होते हैं और वह हमारे समक्ष अनेक प्रकार की प्रतिकूलताऐं जटिलताऐं

प्रस्तुत करते हैं तो इसको ही साधारणतया दुर्भाग्य कहा जाता है। प्रतिकूल परिस्थितियां क्यों उत्पन्न हुई? इस तथ्य पर हमें विचार करना चाहिए। वे परिस्थितियां किस प्रकार की है? यह भी विचार करना आवश्यक है। साधारणतया प्रतिकूलतायें निम्न प्रकार की होती हैं।

(क) आर्थिक प्रतिकूलता :–

जिसे हम दुर्भाग्य कहते हैं वह आर्थिक प्रतिकूलता के रूप में भी प्रकट हो सकता है। इसी कारण से आपने अनुभव किया होगा कि हम जो भी कार्य करते हैं उसमें हानि ही हानि हो जाती है। आर्थिक स्थितियां बिगड़ती जाती हैं जिससे आर्थिक समस्याऐं उत्पन्न होती हैं और जब आर्थिक समस्याऐं उत्पन्न हो जाती हैं तो इसे हम दुर्भाग्य का पर्याय मान लेते हैं। इस प्रकार यह दुर्भाग्यरूपी स्थिति आर्थिक प्रतिकूलता के स्वरूप में प्रकट होती है। इसका कारण हम नहीं जान पाते हैं और एक अनिश्चित आर्थिक भय से खिन्न और दुखी रहते हैं। सामान्य व्यक्ति इसे दुर्भाग्य की ही संज्ञा देता है और अपनी विषम आर्थिक स्थिति पर आंसू बहाता रहता है।

(ख) पारिवारिक प्रतिकूलता :–

पारिवारिक प्रतिकूलता के रूप में भी दुर्भाग्य प्रकट हो जाता है। जैसे हमारे परिवार में किसी प्रकार की वैमनष्यता, पारस्परिक द्वेषभाव आदि आ जाते हैं। अचानक ही पारस्परिक सम्बंधों में खटास और प्रतिकूलता उत्पन्न हो जाती है। एक प्रसन्नतापूर्वक रहनेवाला परिवार अचानक ही ईष्याद्वेषरूपी अग्नि में जलने लगता है। घर और परिवार में इसी कारण नित्य निरन्तर कलह हुआ करती है। पारिवारिक सदस्य परस्पर छोटी से छोटी बातों में उलझते हुए प्रतीत होते हैं और एक दूसरे को अपशब्दों का प्रयोग करते हैं। मारपीट भी हो जाती है। सब कुछ सामान्य रूप से चलने वाला परिवार प्रतिकूलता के कारण दुर्भाग्यग्रस्त हो जाता है।

(ग) सामाजिक प्रतिकूलता : –

हम जिस समाज में रहते हैं उस समाज में भी हमारा वर्चस्व रहता है तथा अन्य लोग हमारा अस्तित्त्व भी स्वीकार करते हैं। किसी विशिष्ट घटना के कारण समाज के लोगों से हमारा सम्बंध मित्रतापूर्ण नहीं रहता है। ऐसी स्थिति में समाज में हम अपने को अकेला अनुभव करते हैं। समाज के लोगों की कुदृष्टि हम पर हो जाती है और हम अपने को सामाजिक प्रतिकूलता के रूप में पाते हैं। ऐसी परिस्थिति में भी हम यह कहते हैं कि हमारा दुर्भाग्य है कि हमारे साथ आज समाज नहीं खड़ा हुआ है। सामाजिक प्रतिकूलता की

स्थिति को भी दुर्भाग्य का पर्याय कहा जाता है। चूंकि मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है इसलिए वह सामाजिक प्रतिकूलता को अपने लिए हितकर नहीं मानता है। जिस समाज में हम रहते हैं उस समाज में यदि प्रतिकूलता उपस्थित हो जाए तो हमारा जीना दूभर हो जाता है। इस प्रकार यह सामाजिक प्रतिकूलता भी हमारे दुर्भाग्य के रूप में प्रकट होती है।

(घ) शारीरिक प्रतिकूलता :–

मनुष्य जब स्वस्थ रहता है तब वह संसार में नाना प्रकार की क्रियाऐं और चेष्टाऐं सहज भाव से करता रहता है और वह इसे अपना बहुत बड़ा सौभाग्य मानता है। वस्तुतः प्रत्येक व्यक्ति यदि रोगों से मुक्त है तो इसे भगवान की दया ही मानना चाहिए। शारीरिक स्वस्थता भगवान की साक्षात् कृपा है। कभी–कभी अचानक ही मनुष्य बीमार हो जाता है यह प्रतिकूलता मनुष्य के दुर्भाग्य के रूप में प्रकट हो जाती है। अनेक प्रकार के साध्य और असाध्य रोग जब मनुष्य के शरीर को घेरते हैं तब उसे बहुत आंतरिक मानसिक कष्ट होता है कि कल तक हम बिल्कुल स्वस्थ थे आज हमें अनेक प्रकार के रोगों ने घेर लिया है। कल हम अच्छे भले थे आज बीमार हो गए है। इस प्रकार की शारीरिक बीमारियों को भी मनुष्य दुर्भाग्य के रूप में लेता है और यह कहता है कि हमारा यह दुर्भाग्य ही है कि हम शारीरिक रूप से अक्षम होते जा रहे हैं। हम संसार में जैसा कार्य कल करते थे वैसा बीमारी के कारण आज नहीं कर पा रहे हैं। इसलिए शारीरिक प्रतिकूलता भी दुर्भाग्य के रूप में प्रकट होती है।

(ङ) दैवीय प्रतिकूलता :–

आपने देखा होगा कि कतिपय अज्ञात कारणों से हमारे ऊपर अनेक प्रकार की दैवीय आपदाऐं आती हैं। जैसे आग का लग जाना, बाढ का आ जाना, ओला वृष्टि हो जाना,किसी पारिवारिक उत्तरदायी सदस्य की असमय मृत्यु हो जाना आदि आदि। ये दैवीय प्रतिकूलता के रूप में हमारे समक्ष प्रकट हो जाते हैं। यह दैवीय प्रतिकूलताऐं स्वतः ही प्रकट होती हैं। यह क्यों प्रकट होती है? यह तो अन्य विषय है उसके कारणों का यहां पर उल्लेख नहीं किया जा रहा है। जो दैवीय प्रतिकूलताऐं मनुष्य के जीवन में प्रकट होती हैं उनको भी मनुष्य अपना दुर्भाग्य मानता है और वह अत्यंत दुःखी हुआ करता है। जैसे किसी का व्यवसाय अच्छी स्थिति में चल रहा हो और उसके व्यवसायिक स्थल पर किसी कारण से आग लग जाए तो इसे दैवीय प्रतिकूलता ही कहा जाएगा। इस प्रकार दैवी प्रतिकूलता के रूप में भी दुर्भाग्य प्रकट होता है।

(च) पद, प्रतिष्ठा, ऐश्वर्य, विनाश की प्रतिकूलता :–

हम जिस समाज में रहते हैं उसमें हमारी कुछ प्रतिष्ठा रहती है और उस प्रतिष्ठा के कारण ही हमारा ऐश्वर्य भी रहता है। प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य अधिकांशतः हमारे पद के कारण भी होती है और इसके अन्य कारण भी हो सकते हैं। जैसे हम धनवान हैं। ज्ञानवान हैं तो भी हमें प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य प्राप्त होता रहता है। इसी घटना से यदि हमारे पद का, ऐश्वर्य का, प्रतिष्ठा का बहुत विनाश हो जाता है तो हमारा ऐश्वर्य और प्रतिष्ठा धीरे–धीरे समाप्त होने लगता है। हमारा उच्च पद चला जाए तो उस उच्च पद के जाने के साथ ही प्रतिष्ठा भी चली जाती है। इसे हम अपनी प्रतिकूल स्थिति मानकर और समझ कर दुर्भाग्य का रोना रोते हैं। इस प्रकार पद, प्रतिष्ठा और ऐश्वर्य का विनाश भी दुर्भाग्य के रूप में हमारे समक्ष प्रकट हो जाता है।

प्रतिकूलताओं को हम दुर्भाग्य की संज्ञा देते हैं और अनुकूलताओं को हम सौभाग्य कहते हैं। पर प्रतिकूलता और अनुकूलता कैसे प्रकट होती है ? यह भी अत्यंत विचारणीय है। प्रतिकूलताओं से हमें दुःख होता है और अनुकूलताओं से हमें सुख और प्रसन्नता का आभास होता है। इस सम्बंध में जब हम गहनता से विचार करते हैं तो स्पष्ट हो जाता है कि हमारी प्रतिकूलताऐं और अनुकूलताऐं हमारे कर्मो के परिणाम स्वरूप ही स्वतः प्रकट हो जाती हैं। हमारे संचित कर्मो का परिणाम हमें दुर्भाग्य तथा सौभाग्य का दर्शन कराता है। जैसे हम जब जल को गरम करते हैं तो वह भाप के रूप में प्रकट होकर हवा में विलीन हो जाता है। वैसे ही हमारे जो कर्म हैं वे दुर्भाग्य और सौभाग्य बनकर हमें अनुकूलता और प्रतिकूलता देते रहते हैं जिसे हम अपना दुर्भाग्य और सौभाग्य कहते हैं वह सब हमारे कर्मो के परिणाम के रूप में हमारे समक्ष प्रकट होता है। इस कारण मनुष्य अपने भाग्य का स्वयं निर्माता है। वह अपने शुभकर्मो के पश्चात् अपने सौभाग्य को स्वयं प्रकट कर सकता है।

(36) तंत्र मंत्र का भ्रम त्यागे :–

तंत्र मंत्र से यदि हम अपना दुर्भाग्य और प्रतिकूलताऐं समाप्त करना चाहते हैं तो यह हमारा नितान्त मिथ्या भ्रम है। कोई भी तंत्र, मंत्र, तांत्रिक साधना हमारे भाग्य में परिवर्तन कदापि और किंचित नहीं कर सकती है। आज के युग में तंत्र, मंत्र साधना का प्रचार प्रसार जोरों पर है। अनेक महानुभाव इस कार्य में अपने को संलग्न किये हैं। वे तांत्रिक विधि से भाग्य के परिवर्तन को, कष्टों के निवारण को दुर्भाग्य के समापन के लिए कहते हैं। उनका यह समग्र कार्य नितान्त मिथ्या है। हमारा भाग्य, हमारी प्रतिकूलाऐं परमात्मा की व्यवस्था के अनुसार चलती हैं जिसे परिवर्तित करने की सामर्थ्य किसी में नहीं

है। यह तथ्य यदि आपके मन बुद्धि में आ रहा है कि कोई तंत्र, मंत्र साधना से, अनुष्ठान से हमारे कष्टों का निवारण हो सकता है तो इस विचार को जबरदस्ती मन और बुद्धि से बाहर करें। मन से कहें कि वह इस तंत्र साधना की बात को, विचार को मन से विचारना छोड़ दें तथा बुद्धि से उसका विनिश्चय त्यागे।

जो महानुभाव तंत्र मंत्र साधना का कार्य कर रहे हैं वे अपने जीवन का अत्यंत दूषित कार्य कर रहे हैं। इस कार्य से उनका निकट भविष्य में बहुत अहित होने वाला है क्योंकि एक तो तांत्रिक उपासना, शास्त्र सम्मत नहीं है। इस कारण उसका प्रतिपादन करना नैतिक नहीं है। दूसरे वे भोले भाले लोगों को भ्रामक मार्ग पर ले जाते हैं तथा उन्हें धन आदि लेकर ठगते रहते हैं। ऐसे लोगों के लिए परमात्मा की दोहरी दंड व्यवस्था है जिसे उन्हें निश्चित रूप से भुगतना पड़ता है। तांत्रित साधना के साधकों से अनुरोध है कि वह इस साधना को त्याग कर परमात्मा की शरण ग्रहण करें। परमात्मा के अनन्य चिंतन में डूब जाऐ। यही उनके कल्याण का साधन है और यदि उन्होंने ऐसा नहीं किया तो अंततः उन्हें मृत्यु के पश्चात् हजारों वर्षो तक प्रेतयोनि में रहना पड़ेगा जहां पर विषमताऐं और प्रतिकूलताऐं है तथा कष्टों की सीमा नहीं है। सभी महनुभावों से अनुरोध है कि ऐसे तथाकथित तांत्रिकों के बहकावें में न आये क्योंकि वे आपके भाग्य को परिवर्तित करने में स़क्षम नहीं हैं क्योंकि भाग्य का निर्माण हमारे कर्मो के आधार पर होता है किसी तांत्रिक विधा से नहीं होता है।

(37) देवताओं के यजन पूजन से संचित कर्म टाले जा सकते हैं, विनिष्ट नहीं किये जा सकते :–

शास्त्रों में देवताओं की 33 कोटियों का वर्णन आता है। जिसका अभिप्राय यह है कि परमात्मा ने इस ब्रह्मांड की सुचारू व्यवस्था के लिए स्थान स्थान पर अनेक देवी देवताओं की नियुक्तियां कर रखी हैं। इन्द्र, यम, वरूण, कुबेर, अग्नि, सूर्य, वायु, आदि आदि देवता इस विशाल ब्रह्मांड की पृथक्–पृथक् व्यवस्था को देखते हैं, सूर्य चन्द्र नक्षत्र आदि प्रकाश की व्यवस्था करते हैं, इसके अतिरिक्त असंख्य देवगण भी हैं जिन्हें पृथ्वी तथा अन्य लोकों की व्यवस्था के अधिकार परमात्मा ने प्रदान किये हैं। सृष्टि के आरम्भकाल में देवताओं की उपासना विधि का वेदों में साविस्तार वर्णन किया गया था। मनुष्य को देवताओं की उपासना का अधिकार प्रदान किया गया। मनुष्य का यह कर्तव्य कर्म है कि वह अपने से श्रेष्ठ देवी देवताओं की सविधि उपासना करें। जैसे हम संसार में किसी व्यक्ति की सेवा करते हैं तो वह हमें अपनी सेवा के प्रतिकार में बदले में कुछ लाभ दे देता है जो लाभ हमें प्राप्त होता है वह हमारी सेवा के आधार पर प्राप्त होता है। जो सेवा प्राप्त करता है उसकी

सामर्थ्य के आधार पर ही प्राप्त होता है। वैसे ही प्रत्येक देवता को परमात्मा ने अधिकार प्रदान किये हैं और यदि हम उस देवता की विधिपूर्वक उपासना करते हैं तो उसके प्रसन्न होने पर वह अपने अधिकार क्षेत्र में रहकर हमारी पूजा उपासना का फल हमें प्रदान कर देता है।

हमारे जो संचित कर्मो के परिणाम हैं वे फल देने को तत्पर रहते हैं। यदि वो हमारे प्रतिकूल हैं तो देवी देवताओं की उपासना से उन्हें कुछ समय तक के लिए टाला जाना संभव है। जैसे शरीर में एक गंभीर रोग होता है तो उसे उचित औषधि देकर कुछ समय के लिए दबा देते हैं अर्थात् शान्त कर देते हैं। जब तक औषधि का प्रभाव रहता है तब तक वह रोग दबा रहता है। औषधि का प्रभाव समाप्त होते ही वह पुनः शरीर में प्रकट हो जाता है। इसी प्रकार हम अपनी प्रतिकूलता को दुष्कर्मो के परिणाम को देवी देवताओं के यजन पूजन के माध्यम से कुछ समय के लिए टाल सकते हैं परन्तु उन्हें समग्रता से समाप्त नहीं कर सकते हैं। देवी देवताओं के यजन पूजन से हमारी पूजा उपासना की क्रिया से शुभ परिणाम प्रकट होने लगते हैं। यह देवी देवताओं की कृपा स्वरूप ही होता है। वे हमारी पूजा उपासना का परिणाम देने लगते हैं तो हमारी प्रतिकूलता स्वतः ही समाप्त हो जाती है। इस प्रकार शुभ कर्मो के परिणाम से मनुष्य अपनी प्रतिकूलताओं को टाल सकता है। कितने समय तक टाल सकता है ? यह हमारी पूजा उपासना की क्रिया तथा परिमाण पर आधारित है। कर्म फल विनिष्ट तो नहीं होते हैं और जब शुभ कर्मो का परिणाम समाप्त होता है तो संचित दुष्कर्मो के परिणाम प्रकट हो जाते हैं और हमें अनेक प्रकार की प्रतिकूलताऐं देते हैं। यह प्रतिकूलताऐं आर्थिक, पारिवारिक, सामाजिक, शारीरिक अथवा दैवीय प्रतिकूलताओं के रूप में प्रकट हो जाती हैं।

(38) संचित दुष्कर्मो के विनाश एवं दुर्भाग्य के समापन के उपाय :–

जो हमारे संचित दुष्कर्म हैं वे दुर्भाग्य के रूप में प्रकट होते रहते हैं तथा हमें प्रतिकूलताऐं प्रदान कर देते हैं। इन संचित दुष्कर्मो के विनाश तथा समापन के लिए हमें ही प्रयास करना पड़ता है। जब तक हम इसके लिए प्रयास नहीं करते हैं तब तक वे समाप्त नहीं हो सकते हैं। शास्त्रों ने इसके विनाश एवं समापन के कुछ विशिष्ट उपाय बताए हैं उनमें तीन विशिष्ट उपाय प्रस्तुत किये जा रहे हैं–

(क) परमात्मा में समस्त कर्मो के अर्पण से :–

हम प्रातः से रात्रि तक संसार में रहकर अनेक प्रकार के कर्म करते रहते हैं वे समग्र कर्म सांसारिक दृष्टि से संसार में रहकर संसार के लिए किये जाते हैं। हम समस्त कार्य संसार के लिए संसार की प्राप्ति के लिए करते हैं इस कारण कर्मो का अर्पण संसार में

रहता है। संसार के लिए जो कर्म करते हैं वे स्वार्थपरक भावना से अधिक होते हैं जिससे हमारा कर्म बंधन बढता है। जब हम अपने समस्त कर्म परमात्मा में अर्पण करते हैं तो यह विचार रहता है कि हम कोई ऐसा कार्य न करें जिससे परमात्मा अप्रसन्न हो। इस तथ्य को दूसरी ओर विचारे तो पायेंगे कि हमारे जो कर्म संसार के लिए होते हैं उनमें हम अपने सम्पर्कित लोगों या स्वयं अपने लिए प्रसन्नता प्राप्त करने का प्रयास करते हैं। इसी प्रकार जब हम परमात्मा के लिए कर्म करते हैं तो परमात्मा को प्रसन्न करने का भाव रहता है। इस भाव से जो कर्म होते हैं वे परमात्मा को अर्पित हो जाते हैं। ऐसी स्थिति में हम कर्म तो करते हैं परन्तु उनका झुकाव परमात्मा की ओर रहता है। जिन कर्मो का झुकाव परमात्मा की ओर हो जाता है वे प्रतिकूल परिणाम नहीं देते हैं जिससे कर्मफल नहीं बनता है और संचित कर्म भी नहीं होते हैं। परमात्मा में कर्मो के समर्पण का अभिप्राय है कि हम सोते, जागते, खाते, पीते, उठते, बैठते, टहलते, घूमते जो भी क्रियाऐं करते हैं वे परमात्मा को उसी प्रकार समर्पित करे जैसे उन क्रियाओं का समर्पण संसार में करते हैं। स्पष्ट तथ्य यह है कि हम प्रातः से रात्रि तक जो भी करते हैं सब क्रियाओं को परमात्मा के आश्रय से करें तथा परमात्मा में समर्पित करें। ऐसा करने से पूर्व संचित कर्मो से उत्पन्न प्रतिकूलताऐं अर्थात् दुर्भाग्य समाप्त हो जाएगा ओर नवीन कर्मो की अशुभता समाप्त होने से सौभाग्य प्रकट हो जाएगा अर्थात् प्रतिकूलता समाप्त होगी और अनुकूलता प्रकट हो जाएगी।

(ख) परमात्मा के अनन्य चिंतन से :–

हम सभी संसार के बारे में विचार करते रहते हैं अर्थात् हमारा मन और हमारी बुद्धि दोनों ही संसार में रहते हैं। यह संसार का चिंतन सदैव हमारे साथ–साथ रहता है। हम कहीं भी जाऐ कहीं भी रहे पर विचार में संसार ही रहता है। जब संसार विचार में रहता है तब संसार के सांसारिक कर्म के विषय में विचार चलता रहता है और वैसे ही कर्म होते रहते हैं। संसार का विचार होने से संसार के कर्म होने से सब जो भी करते हैं वह सब स्वार्थपरक होने के कारण अपना परिणाम देते हैं तथा हमारे लिए दुष्परिणामी होते हैं। हमें जो अनेक प्रकार का सुख और दुख प्राप्त होता है तथा अनुकूलता और प्रतिकूलता का आभास होता है। इसके मूल में सांसारिक चिंतन ही आधार है।

इस विचार के प्रतिकूल हम जब परमात्मा के विषय में विचार करते हैं उसके बारे में सोंचते है तो परमात्म विषयक भजन, पूजन, स्मरण होता है। मन बुद्धि में विचार करने की जो शक्ति है और विनिश्चय करने की जो सामर्थ्य है वह परमात्मा की ओर यदि उन्मुख हो जाए तो धीरे–धीरे समय के साथ प्रयास से वह परमात्मा के विषय में अनन्यता की ओर बढ़ती है। जब हम किसी से स्नेह करते हैं तो हम स्नेहवश उसे स्मरण करते हैं यह स्मृति

निरन्तर स्नेह के कारण बढती जाती है। स्नेह बढता है तो उसके बारे में स्मृति भी बढ़ जाती है। एक समय ऐसा आता है कि हम उसे किसी भी क्षण भुला नहीं पाते हैं। तब यह स्मरण अनन्यता की ओर अग्रसर होता है। उसी प्रकार जब हम परमात्मा से स्नेह करते हैं तो भी हमारा चिंतन परमात्मा की ओर बढ़ता है। स्नेह के साथ ही उसमें अनन्यता आती है। संसार हमारी मन बुद्धि से समाप्त होता जाता है और उस स्थान पर परमात्मा प्रवेश करता जाता है। इस कारण जब परमात्मा हमारी मन और बुद्धि में आ जाता है तो हमारा दुर्भाग्य स्वतः ही समाप्त होने लगता है। इसलिए परमात्मा के अनन्य चिंतन से भी हमारे संचित दुष्कर्म समाप्त हो जाते हैं और हम सौभाग्यशाली हो जाते हैं तथा हमारा दुर्भाग्य समाप्त हो जाता है।

(ग) निष्काम भाव से परमार्थिक कार्यो से :–

हम जब साधारणतया किसी की सेवा सहायता करते हैं तो हमारे मन में कई प्रकार के स्वार्थी भावों का उदय होता है। हम अकारण किसी की सेवा सहायता का कार्य नहीं करते हैं। यह एक सामान्य भाव है। जैसे हम यदि किसी की सहायता धन से करना चाहते हैं तो यह विचार रखते हैं कि हम जिस व्यक्ति की धन से सहायता करेंगे तो वह व्यक्ति हमें उसे बदले में क्या सहायता देगा ? अथवा हमारी सहायता के प्रतिकार में वह व्यक्ति हमारे लिये कितना उपयोगी सिद्ध होगा ? यह विचार अधिकांशतः अव्यक्त रहता है परन्तु वर्तमान परिस्थितियों में व्यक्त भी हो रहा है। हमें उससे कुछ लाभ की यदि आशा नहीं होती है तो हम उसकी सहायता करने से अपना हाथ खींच लेते हैं। हमारे लिए कोई व्यक्ति उपयोगी नहीं है। अथवा उससे हमें भविष्य में सहायता प्राप्त नहीं हो सकती है तो हम भी उसकी सहायता के बारे में कदापि विचार नहीं करते हैं। जब हमें किसी व्यक्ति से कुछ लाभ की आशा प्रतीत होती है तो हम उसकी सहायता करने को तत्पर हो जाते हैं। यही सहायता का सकाम भाव कहा जाता है।

निष्काम भाव से जो सहायता होती है उसमे प्रतिकार की भावना, बदले की भावना के भाव का अभाव रहता है। मन में किसी भी प्रकार की सहायता के पश्चात् उससे किसी भी प्रकार के लाभ की आशा न करना ही निष्काम भाव कहा जाता है। सकाम भाव से सहायता का परिणाम अर्थात् फल बहुत कम मात्रा में प्राप्त होता है। निष्काम भाव से जो सहायता होती है उसका परिणाम बहुत विशाल होता है। जैसे हम गरीबों के भोजन, वस्त्र, शिक्षा, चिकित्सा, नैतिक उत्थान के लिए जब निष्काम भाव से कार्य करते हैं तो वह अत्यंत उत्कृष्ट फल प्रकट करता है। परमात्मा ऐसे कार्यो में सहायता करता है। निष्काम भाव से, परमार्थ के कार्यो से हमारे संचित दुष्कर्म स्वतः ही समाप्त हो जाते हैं और उसके फल के

रूप में अनुकूलताएं बढ़ती हैं जिसे हम साधारण भाषा में सौभाग्य कहते हैं। इस कारण निष्काम भाव से परमार्थिक कार्यो के सम्पादन से हमारे दुष्कर्मो का समापन हो जाता है और हमारे संचित दुष्कर्म समाप्त हो जाते हैं। इस प्रकार निष्काम भाव से परमार्थिक कार्यो का सम्पादन करके हम अपने दुर्भाग्य को समाप्त कर सकते हैं तथा सौभाग्य को प्रकट कर सकते हैं।

(39) मात्र परमात्मा संचित कर्मो के परिणाम को नष्ट कर सकता है :–

हमारे जो भी संचित दुष्कर्म हैं वे चाहें इस जन्म के हों अथवा पूर्व हजारों जन्मों के हों। उन सबको समूल नष्ट करने का विशेषाधिकार परमात्मा के पास होता है। हमारे सामाजिक जीवन में कुछ अधिकारियों को विशेषाधिकार प्राप्त होते हैं और इसका उपयोग विशेष परिस्थितियों में करते भी है। अनायास, अनावश्यक रूप से कोई भी अधिकारी अपने विशेषाधिकारों का प्रयोग कदापि नहीं करता है। वह ऐसा क्यों करना चाहेगा? कदापि नहीं करना चाहेगा। वैसे ही परमात्मा की जो कर्म व्यवस्था है वह नितान्त पारदर्शी है उसमें भी किसी प्रकार की कोई त्रुटि नही है। त्रुटिविहीन कर्म व्यवस्था होने के कारण हम सब अथवा कोई भी इससे पृथक् नहीं है। आपने देखा होगा कि जगत का बड़े से बड़ा तानाशाह, अखण्ड साम्राज्य का राष्ट्राध्यक्ष भी परमात्मा की इस कर्म व्यवस्था के अधीन है। उसके लिए परमात्मा की कर्म व्यवस्था के वैसे ही नियम प्रभावी हैं जैसे एक भिखारी के लिए होते है। इस आधार पर उस अव्यक्त परमात्मा की कर्म व्यवस्था को किसी भी प्रकार परिवर्तित नहीं किया जा सकता और न ही उसमें कोई छूट प्राप्त होती है। सामान्य स्थिति तो यही है। परमात्मा ने अपनी कर्म व्यवस्था का स्वयं ही निर्माण किया है और उसकी ओर से कर्म व्यवस्था के व्यवस्थापकों को कड़ी चेतावनी है कि वह किसी भी परिस्थिति में उसका पालन कराये। इसी कारण यह उक्ति प्रसिद्ध है कि होनी नहीं टाली जा सकती। अर्थात् जो घटना हमारे कर्मो के फलस्वरूप होनी है वह अवश्य ही होगी। हम जानते भी नहीं हैं कि भविष्य में क्या घटना होगी ? जिससे हमारा जीवन अस्त व्यस्त हो जाएगा अथवा हम अपने जीवन में काफी सीमा तक अव्यवस्थित हो जायेंगे। भविष्य में ऐसी परिस्थितियों को टालना संभव नहीं है। परमात्मा उन्हें सामान्य रूप से टालता भी नहीं है क्योंकि वह अपनी कर्म व्यवस्था में किसी भी प्रकार का हस्तक्षेप नहीं चाहता है।

कभी–कभी परमात्मा किसी के संचित कर्मो को तत्काल भस्म कर देता है तथा हमें भावी दुर्घटना से बचा लेता है। यह परमात्मा का विशेषाधिकार है। कोई उत्कृष्ट साधक परमात्मा के अत्यंत निकट जब आ जाता है और वह परमात्मा की अनुभूति कर लेता है तो उसकी प्रार्थना पर परमात्मा अपने विशेषाधिकार का प्रयोग करके किसी भी मात्रा में संचित

दुष्कर्मो को समाप्त कर सकता है अर्थात् भस्म कर सकता है। उत्कृष्ट साधकों के संचित कर्म फल देने को इसी कारण उन्मुख हो जाते हैं, क्योंकि परमात्मा संचित गंदगी को सम्पूर्णता से साफ करके उस साधक को अपने निकट लाना चाहता है। इस प्रकार यह परमात्मा का विशेषाधिकार है कि वह हमारे संचित दुष्कर्मो को तत्काल विनिष्ट कर दे। हम उसके परमभक्त होकर अपने संचित कर्मो को भस्म करने हेतु उससे प्रार्थना कर सकते हैं। वह हमारी प्रार्थना स्वीकार करके हमारे साधन की उत्कृष्टता को देखकर हमारे संचित दुष्कर्म तत्काल नष्ट कर देता है। इससे भी हमारे सौभाग्य का उदय हो जाता है और हम मुक्ति के पात्र हो जाते हैं। **इस प्रकार हमारे भाग्य में हमारे कर्म ही मूल आधार हैं। जैसे हमारे कर्म होंगे वैसा हमारा भाग्य का निर्माण होगा। यही नियम है यही निश्चित, ध्रुव, अटल सिद्धान्त है जो सृष्टि के आदिकाल से आज तक चला आ रहा है।**

आरम्भ 20 मार्च 2012 – समापन 28 मार्च 2012